ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जून २०१३

वर्ष ४२ : अङ्क ८
दयानन्दाब्द : १९०
विक्रम-संवत् : ज्येष्ठ-आषाढ़ २०७०
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११४

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आर्य

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, नया बांस, मन्दिर वाली गली,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९९५०९२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक के लेख

- वैदिक पथ के पथिक..... २
- वेदोपदेश ३
- स्वाध्याय से ध्यान.... ५
- आर्यसमाज की बलिदानी परम्परा ८
- हमने क्या खोजा..... १०
- कहाँ देखते हो?...... १६
- सुखी कौन, सुखी कैसे? १८
- पञ्च महायज्ञ २२
- वेदों की ओर.... २५
- वेदों का प्रकाश २७

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

वैदिक पथ के पथिक- श्री राम

(पं0 नन्दलाल निर्भय, चलभाष-9818345774)

प्यारा आर्यवर्त्त था, दुनिया का सरदार।
करता था सारा जगत्, भारत का सत्कार।।
भारत का सत्कार, वेद प्रचार यहाँ था।
हर मानव था सुखी, श्रेष्ठ व्यवहार यहाँ था।।
भारतवासी प्यार, परस्पर सब करते थे।
शासक थे गुणवान, प्रजा का दुःख हरते थे।।

वैदिक पथ के थे पथिक, रघुनन्दन श्री राम।
कौशल्या सुत ने किये, पर हितकारी काम।।
पर हितकारी काम, राम थे, सच्चे नेता।
मानवता के पुंज, बहादुर वीर विजेता।।
ईश्वर भक्त महान, बली थे परोपकारी।
दानवदल के काल, सत्यवादी तपधारी।।

नेता भारत के गए, श्री राम को भूल।
काम गलत ये कर रहे, वेदों के प्रतिकूल।।
वेदों के प्रतिकूल, नित्य करते घोटाले।
रहे देश को लूट, रात-दिन विषधर काले।।
जनता भारी दुःखी मौज ये मार रहे हैं।
नाव देश की डुबा, बीच मझधार रहे हैं।।

आर्यकुमारो! विश्व में, करो वेद प्रचार।
कलह-फूट को दो मिटा, करो विश्व उद्धार।।
करो विश्व उद्धार, बनो त्यागी-तपधारी।
याद रखो, सम्मान करेगी, दुनिया सारी।।
दुःखियों का दुःख हरो, राम से वीर बनो तुम।
चन्द्रगुप्त, चाणक्य, शिवा रणधीर बनो तुम।।

जगत् गुरु दयानन्द की, शिक्षाओं को मान।
मानवता धारण करो, होगा तब कल्याण।।
होगा तब कल्याण, द्वेष घृणा को त्यागो।
करो परस्पर मेल, पुत्र ऋषियों के जागो।।
अगर न दोगे ध्यान, साथियो! पछताओगे।
दुनियां में नादान, सुनो! माने जाओगे।।

❑❑

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। – महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। विष्णुः = सूर्यः देवता। निचृत् त्रिष्टुपः छन्दः। धैवतः स्वरः।।

अथ यजमानभौतिकाग्निकृत्यमुपदिश्यते।।

अब यजमान और भौतिक अग्नि के कर्म का उपदेश किया जाता है।

ओ३म्– अह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्।
विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च

यजु० १-९।।

पदार्थः–(अह्रुतम्) कुटिलतारहितम् (असि) अस्ति। अत्र व्यत्ययः (हविर्धानम्) हविषां धानं=स्थित्यधिकरणम् (दृंहस्व) वर्धयस्व वर्धयति वा। अत्र पक्षे व्यत्ययः (मा ह्वाः) मा त्यजेः। अत्र लिङर्थे लुङ् (मा) क्रियार्थे निषेधवाची (ते) तव (यज्ञपतिः) पूर्वोक्तस्य यज्ञस्य पतिः=पालकः (ह्वार्षीत्) त्यजतु। अत्र लोडर्थे लुङ् (विष्णुः) व्यापनशीलः सूर्य्य (त्वा) तद्धोतव्यं द्रव्यम् (क्रमताम्) चालयति। अत्र लडर्थे लोट् (उरु) बहु। उर्विति बहुनामसु पठितम्। निघं ३।१।। (वाताय) वायोःशुद्धये सुखवृद्धये वा (अपहतम्) विनाशितम् (रक्षः) दुर्गन्धादिदुःखजालम् (यच्छन्ताम्) निगृह्णन्तु (पञ्च) पञ्चभिरुत्क्षेपणादिभिः कर्मभिः। उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुंचनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि।। वैशे० १।७।। अत्र सुपां सुलुगिति भिसो लुक्।। यं मंत्रसः श० १ । १ । २ । १२-१६ व्याख्यातः।।९।।

प्रमाणार्थ – (असि) अस्ति। यहाँ पुरुष-व्यत्यय है। (दृंहस्व) वर्धयस्व, वर्धयतु वा। यहाँ पक्ष में व्यत्यय है। (मा ह्वाः) मा त्यजेः। यहाँ लिङ् अर्थ में लुङ् लकार है। (ह्वार्षीत्) त्यजतु। यहाँ लोट अर्थ में लुङ् लकार है। (क्रमताम्) चालयति। यहाँ लट् अर्थ में लोट् है। (उरु) उरु शब्द निघं० (३।१) में बहुनामों में पढ़ा गया है। (पञ्च) कर्मभिः। वैशेषिक (१।७) में उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन ये पांच प्रकार के कर्म बताए हैं। 'पञ्च' शब्द में सुपां सुलुक्० (७।१।३९) से भिस् का लुक् है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१।१।२।१२-१६) में की गई है।। १।९।।

सपदार्थान्वयः – **हे ऋत्विक् ! त्वं यदग्निना दृंहितमह्रुतं** कुटिलतारहितं **हविर्धानं** हविषां धानं स्थित्यधिकरणम् **असि=अस्ति, तद् दृंहस्व** वर्धयस्व

वर्धयति वा किन्तु तत्कदाचिन्मा ह्वाः=मा त्यजेः। इदं ते=तव यज्ञपतिः पूर्वोक्तस्य यज्ञस्य पतिः=पालको दृंहताम्, मा ह्वार्षीत्= मत्यजतु।

एवं भवन्तः सर्वे मनुष्याः (पञ्च)= पञ्चभिरुत्क्षेपणदिभिः कर्म्मभिर्यदग्नौ हूयते तन्नियच्छन्ताम्=निगृह्णन्तु।

यद् द्रव्यं विष्णुः=व्यापनशीलः सूर्य्योऽपिहतं विनाशितं रक्षः दुर्गन्धाऽऽदिदुःखजालं यथा स्यात्, तथा उरु बहु वाताय वायोः शुद्धये सुखवृद्धये वा (क्रमताम्)=क्रमयति=चालयति।

त्वा=तत्सर्वं तद्धोतव्यं द्रव्यं मनुष्या अग्नौ होमद्वारा यच्छन्ताम्= निगृहणन्तु।।१।।६।।

भाषार्थ :– हे ऋत्विक्! तू जो अग्नि से बढ़ा हुआ (अह्रुतम्) कुटिलता रहित (हविर्धानम्) हवियों का आधार यज्ञ (असि) है, उसे (दृंहस्व) बढ़ा, किन्तु उसे किसी काल में भी (मा हाः) मत छोड़। और इसे (ते) तेरा (यज्ञपतिः) यजमान भी (मा ह्वार्षीत्) न छोड़े।

इस प्रकार सब मनुष्य (पञ्च) उत्क्षेपणादि पाँच कर्मो के द्वारा अग्नि में हवन करने योग्य द्रव्यों को (नि + यच्छन्ताम्) ग्रहण करें।

उस हवन किए हुए द्रव्य को (विष्णुः) व्यापनशील सूर्य (अपहतं रक्षः) दुर्गन्ध आदि दुखरूप जाल का नाश करके (उरु) अत्यधिक (वाताय) वायु की शुद्धि और सुख की वृद्धि के लिए (क्रमताम्) आकाश में फैलाता है।

(त्वा) उस होम के योग्य द्रव्य को सब मनुष्य होम के द्वारा (यच्छन्ताम्) ग्रहण करें।

भावार्थः– यदा मनुष्याः परस्परं प्रीत्याकुटिलतां विहाय, शिक्षकशिष्या भूत्वा इमामग्निविद्यां विज्ञानक्रियाभ्यां ज्ञात्वाऽनुतिष्ठन्ति, तदा महतीं शिल्पविद्यां सम्पाद्य, शत्रुदारिद्रयनिवारणपुरःसरं सर्वाणि सुखानि प्राप्नुवन्तीति।

भावार्थ– जब मनुष्य परस्पर प्रीति से कुटिलता को छोड़ कर, शिक्षक और शिष्य बन कर इस अग्नि-विद्या को विज्ञान और क्रिया से जानकर, आचरण करते हैं, तब महान् शिल्प-विद्या को सिद्ध करके- शत्रु और दरिद्रता को दूर भगाकर सब सुखों को प्राप्त करते हैं।

भा. पदार्थ– रक्षः= शत्रुः, दारिद्रयम्।।

भाष्यसार– १. यजमान का कृत्य– कुटिलता को छोड़ कर यज्ञ को बढ़ाये, यज्ञ को कभी न छोड़े। पाँच कर्मों से अग्नि में होम किये द्रव्य को ग्रहण करे।

२. पंच कर्म– उत्क्षेपण=ऊपर को चेष्टा करना। अवक्षेपण=नीचे को चेष्टा करना। आकुञ्चनम्=सिकोड़ना। प्रसारणम्=फैलाना। गमन=चलना।

३. भौतिक अग्नि (सूर्य) का कृत्य– व्यापनशील होने से सूर्य का नाम विष्णु है। सूर्य होम किये हुए द्रव्य को दुर्गन्ध आदि दुःखों को नष्ट करने, वायु की शुद्धि और सुखवृद्धि के लिए आकाश में फैलाता है।

स्वाध्याय से ध्यान समाधि-मोक्ष प्राप्ति का सफर

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून)

मनुष्य जीवन का लक्ष्य ईश्वर का साक्षात्कार कर मोक्ष की प्राप्ति है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए ईश्वर के सत्य स्वरूप को जानना आवश्यक है। आर्य ग्रन्थों के स्वाध्याय से ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् उसका ध्यान व चिन्तन कर स्वात्मा को ईश्वर में समर्पित करना होता है। इस समर्पण की अवस्था में इन्द्रियों को विषयों से सर्वथा पृथक करके मन व आत्मा से ईश्वर के स्वरूप का ध्यान करते हुए उसमें निरन्तरता लायी जाती है। किसी भी अवस्था में मन अन्य किसी साँसारिक विषय को ध्यान में उपस्थित न करके लम्बी अवधि तक यदि वह केवल ईश्वर में ही स्थित रहता है, तो वह समाधि की अवस्था होती है। इस समाधि की अवस्था को प्रत्येक स्वाध्यायकर्ता व ध्याता को प्राप्त करना चाहिये। ध्यान व समाधि की प्राप्ति के लिए आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय अपरिहार्य है। यदि हम ईश्वर के सत्य स्वरूप को नहीं जान पायेंगे और जान लेने पर भी ध्यान नहीं करेंगे तो ईश्वर की प्राप्ति अर्थात् ईश्वर का साक्षात्कार सम्भव नहीं है। स्वाध्याय एक प्रकार से समाधि की बुनियाद या आधारशिला है। जो भी व्यक्ति ईश्वर को प्राप्त करना चाहते है, उन्हें स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये। महात्माओं के प्रवचन व उनका प्रशिक्षण भी ईश्वर की प्राप्ति में सहायक होता हैं यदि वह उपदेशक-गुरु ईश्वर के सत्य स्वरूप को जानता हो और उसका अपना निजी कोई स्वार्थ न हो। आज के गुरुओं में से अनेक भक्तों को अपना चेला या अन्धभक्त बनाने के चक्कर में लगे हैं। उनसे यह आशा नही की जा सकती कि वह भक्तों को सही मार्गदर्शन दे सकेंगे। अनेक गुरु तो ऐसे हैं जो स्वयं ही साँसारिक प्रलोभनों के शिकार हैं। वह ईश्वर का आधा-अधूरा किताबी थ्योरोटिकल ज्ञान ही रखते हैं उन्हें न तो प्रायोगिक ज्ञान का अभ्यास है और न इसमें उनकी प्रवृत्ति या रुचि है। प्रायः ईश्वर की प्राप्ति के लिए प्रयासरत व्यक्ति ऐसे छद्‌म गुरुओं के बीच मे फँस जाता है, जिससे न तो ईश्वर की प्राप्ति होती है और न उसका जीवन ही संवर पाता है। अतः स्वयं के प्रयासों से स्वाध्याय करने में ऐसे खतरे काफी कम हैं। यदि हमें पात्र विद्वानों, अपने मित्रों व शुभ चिन्तकों से स्वाध्याय की अच्छी पुस्तकों की सही जानकारी मिल जाये और आवश्यकता पड़ने पर किसी योग्य प्रशिक्षक या गुरू की सहायता से हमारा कल्याण हो सकता है। इस लेख में हम यह भी बताने का प्रयास करेंगे कि स्वाध्याय के लिए उपयोगी ग्रन्थ कौन से हैं, जिन का अध्ययन कर मनुष्य ईश्वर के साक्षात्कार तक पहुँच सकता है।

स्वाध्याय का आरम्भ करने से पूर्व सभी स्वाध्यायप्रेमी अध्येता बन्धुओं को अपना लख्य निर्धारित कर लेना चाहिये। यदि वह ईश्वर व स्वयं की आत्मा को जानना चाहते हैं तो हमें इसके लिए संकल्पपूर्वक ऐसे ग्रन्थों का चयन करना होगा जिनमें इस विषय का सर्वांगपूर्ण ज्ञान हो, भाषा सरल हो व समझ में आ जाये। यदि ऐसा हो जाता है तो अध्ययन आरम्भ करने पर ईश्वर व आत्मा के बारे में ज्ञान प्रापत होना आरम्भ हो जायेगा और जैसे-जैसे स्वाध्याय में प्रगति होगी, पाठक-अध्येता के ज्ञान में भी प्रगति होगी। स्वाध्याय के साथ-साथ अध्येता या स्वाध्यायीजन को ग्रन्थों में उल्लिखित प्रमुख व महत्वपूर्ण गूढ़ बातों पर ध्यान केन्द्रित कर उसको

बार-बार दोहराना चाहिये, जिससे वह स्मरण रहें और आगे जहाँ उनका उल्लेख आये, वह उसे समझ सके। एक समय का अध्ययन या स्वाध्याय कर लेने के पश्चात् आँखें बन्द कर किसी एक आसन में ध्यान की अवस्था में बैठ जाना चाहिये और पूर्व स्वाध्याय किए विषय एवं ईश्वर व आत्मा के स्वरूप को स्मरण कर उस पर अपना ध्यान केन्द्रित कर इन सबको और गहराई में उतर कर समझने की चेष्टा करनी चाहिये। जैसे-जैसे स्वाध्याय व विचार एवं चिन्तन बढ़ता जायेगा, साधक का स्तर ऊँचा होता जायेगा। ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान व साक्षात्कार होने का काल कम होता जायेगा ओर साधक को एक लाभ यह भी होगा कि स्वाध्याय व साधना की रुचि में वृद्धि होगी। अब ऐसी स्थिति आ सकती है कि बिना स्वाध्याय व चिन्तन के उसे भोजन और निद्रा भी अच्छी न लगे। यदि इस प्रकार की साधक की स्थिति होती है तो यह उसके लक्ष्य के निकट पहुँचने का प्रतीक है। इस अवस्था में पहुँचने पर या इससे पहले ही उसे अपने पुराने मित्र जिनकी स्वाध्याय, आध्यात्म व ध्यान साधना में विशेष रुचि नही होती, अच्छे नहीं लगते क्योंकि वह अनुभव करता है कि उनकी उपस्थिति ओर उनकी फिजूल की बातों से उसके स्वाध्याय व ध्यान में बाधा होती है, लाभ कोई नहीं परन्तु हानि होती है। अतः कुछ समय बाद उन पुराने साथियों से उसका सम्बन्ध कमजोर होने लगता है। इधर उसकी अध्यात्म में प्रगति होती है और उधर पुराने साथियों से उसका सम्बन्ध लगभग समाप्त हो जाता है जिसका कारण साथियों को स्वाध्याय व ध्यान साधना अच्छी नहीं लगती और इस साधक को स्वाध्याय व ध्यान को छोड़ने में अपनी बहुत बड़ी हानि का अनुभव होता है।

स्वाध्याय से ध्यान, समाधि व ईश्वर की प्राप्ति आदि ऐसे-ऐसे लाभ होते हैं जो अन्य किसी प्रकार से नहीं हो सकते। हम ध्यान व समाधि के विषय में विभिन्न योगियों, विद्वानों व सन्यासियों के अनुभवों का अध्ययन करते हैं। सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय से यह भी ज्ञान होता है कि यदि हम एक व्यक्ति को ही गुरु बनायेंगे ओर अन्य विद्वानों व योगियों आदि पात्रों की उपेक्षा करेंगे तो ऐसा करके हम बहुत सारे लाभ व ज्ञान से वंचित हो जायेंगे। अतः हमारा मानना है कि किसी भी अध्येता, उपासक व योगी को अपने मन से यह विचार निकाल देना चाहिये कि वह अपने किसी एक गुरु के अतिरिक्त अन्य ऋषियों, योगियों या विद्वानों के ग्रन्थों का स्वाध्याय नहीं करेगा। हम तो यहाँ तक कहेंगे कि यदि किसी ऐसे व्यक्ति ने कुछ लिखा है जिसे सामान्यतः सुधीजन अस्वीकार करते हैं तो उसे भी पढ़ लेने ओर उसको अस्वीकार करने वाले विद्वानों की आपत्तियों को देख कर समझ लेने में लाभ ही है, हानि कुछ नहीं। इससे हमारा पूर्व अध्ययन किया हुआ ज्ञान स्थिर व स्थाई होता है। हाँ, इतना आवश्यक है कि व्यक्ति जितना अध्ययन करता है उससे अधिक उसे योगाभ्यास कर ध्यान व चिन्तन करना चाहिये इससे बहुत अधिक लाभ होने की सम्भावना है। यदि कवेल पढ़ता ही पढ़ता है, यह बुरा तो नहीं, परन्तु ध्यान व चिन्तन में समय न लगाने से जो बहुत अधिक लाभ हो सकता है, उससे वह वंचित हो जाता है। अतः प्रत्येक स्वाध्यायशील व्यक्ति को स्वाध्याय के साथ-साथ साधना अर्थात् ध्यान व चिन्तन अवश्य करना चाहिये।

अब तक हमने स्वाध्याय के विषय में कुछ जाना है। स्वाध्याय से ईश्वर स्वयं अर्थात् अपनी आत्मा का स्वरूप व ईश्वर की प्राप्ति के उपाय जान लेने के पश्चात् ध्यान व समाधि के विषय में भी जानना होता है जो स्वाध्याय से ही जाना जाता है। ध्यान से पूर्व धारणा की जाती है। चित्त को एक लक्ष्य विशेष में बाँध देने, वहाँ उसे रोकने और टिकाने को "धारणा" कहते हैं। ऐसा करना ईश्वर का ध्यान करने के लिए और

उसकी प्राप्ति के लिए आवश्यक है। धारणा को स्थिर करके ध्यान करना होता है। ध्यान क्या है? ध्यान, ध्येय विषय अर्थात् ईश्वर, जिसे चित्त में धारण किया हुआ है, उसकी अर्थात् ईश्वर की वृत्ति निरन्तर उदय होती रहे, उसमें विषयान्तर की वृति का नितान्त अभाव हो, विषयान्तर से सर्वथा अछूता रहे, ध्यान की अवस्था में एकमात्र ध्येय ही चित्त का आधार बना रहे, यह "ध्यान" का स्वरूप है। ध्यान में जब ध्याता इतना मग्न व तल्लीन हो जाता है कि उसे अपना अर्थात् वह ध्यान कर रहा है, इसका किंचित भी ज्ञान न रहे और केवल उसका ध्येय ही उस स्थिति में उसके सम्मुख उपस्थित या भासमान् हो, उसे समाधि कहा जाता है। इसे यों भी कह सकते हैं कि ध्यान की निरन्तरता जिसमें ध्याता को अपना ज्ञान न रहे और ध्येय का ही आभास निरन्तर बना रहे, वह समाधि की अवस्था है। इस समाधि की अवस्था में ही आत्म साक्षात्कार एवं ईश्वर का साक्षात्कार होता है। ईश्वर का साक्षात्कार क्या है, यह जीवन के उद्देश्य की पूर्ति का होना है। इसी में मानव जीवन की सफलता है। जन्म-मरण रूपी दुःखों की सर्वथा निवृति व मुक्ति की प्राप्ति है। इस मुक्ति या मोक्ष की अवस्था की कालवधि ३१ नील १० खरब ४० अरब - ३१,१०,४०,००,००,००,००० वर्ष है। इस सुदीर्घ अवधि तक मुक्त हुआ जीवात्मा पूर्ण आन्न्द को प्राप्त रहता है। समाधि अवस्था में ईश्वर अपने स्वरूप का जीवात्मा को प्रकाश करता है। इस अवस्था में ईश्वर का आनन्द जीवात्मा में इस प्रकार प्रवाहित होता है जैसे तेज वर्षा में कोई भीग रहा हो या झरने की धारा में नीचे बैठा हुआ हो अर्थात् झरने के जल से सर्वांग शीतलता का अनुभव हो रहा हो। मुण्डकोपनिषद् के ४०वें श्लोक- '**भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयः**। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।' में कहा गया कि ईश्वर का साक्षात्कार अथवा अपने आन्तरिक ज्ञान-चक्षुओं से दर्शन हो जाने पर हृदय की सभी गाँठें व ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, सभी संशय मिट जाते हैं, दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं और तब उस परमात्मा जो कि अपने आत्मा के भीतर और बाहर व्याप रहा है, उसमें वह जीवात्मा निवास करता है। ईश्वर के साक्षात्कार के बाद जब मृत्यु आती है, तब जीव जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर मुक्ति में चला जाता है। मुक्ति का लाभ व सुख ऐसा है जिसकी उपमा में कोई साँसारिक सुख या पदार्थ नहीं है। हाँ, यह तो कह सकते हैं कि साँसारिक सुख मुक्ति के सुख की तुलना में हेय ही हैं। यह मुक्ति कुछ ही लोगों को प्राप्त होती है। हम यह अनुमान करते हैं कि अतीत में यह मुक्ति योगेश्वर कृष्ण, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, महर्षि दयानन्द सरस्वती, इनसे पूर्व हुए सन्त, ऋषि-महर्षि व योगियों को प्राप्त हुई होगी। प्रत्येक समझदार वा ज्ञानी मनुष्य को वेद-मार्ग पर चल कर मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होना चाहिये।

स्वाध्याय के लिए उपयोगी ग्रन्थों का उल्लेख भी हम कर देते हैं। इनके अतिरिक्त भी बहुत से ग्रन्थ हैं जो पढ़ सकते हैं। इसका चयन व निर्णय प्रत्येक व्यक्ति अपने विवेक से कर सकता है। सत्यार्थ प्रकाश, आर्याभिविनिय, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, योगदर्शन पर अनेक आर्य विद्वानों के भाष्य, प्रमुख ११ उपनिषद्, ६ योग-सांख्य-वेदान्त-वैशेषिक-न्याय-मीमांसा दर्शन और इन पर आर्य विद्वानों यथा पं० उदयवीरजी शास्त्री आदि के भाष्य, मनुस्मृति, चारों वेदों पर महर्षि दयानन्द एवं आर्य विद्वानों के भाष्य आदि आदि। इनके अतिरिक्त महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र जो स्वामी सत्यानन्द, पं० लेखराम व देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा लिखित है, उपयोगी हैं। हमने यहाँ न्यूनतम् ग्रन्थों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थ हो सकते हैं, जिनका स्वाध्याय उपयोगी हो सकता है। इसका निर्णय प्रत्येक स्वाध्यायशील व्यक्ति स्वमति से कर सकता है।

हमने स्वाध्याय से ध्यान, समाधि, ईश्वर की प्राप्ति व साक्षात्कार एवं मुक्ति का जो वर्णन किया है, इससे यदि किसी को कुछ लाभ प्राप्त होता है, तो हम अपने इस प्रयास को सफल समझेंगे।

❑❑

आर्यसमाज की बलिदानी परम्परा

(धर्मपाल आर्य, 2 एफ, कमला नगर, दिल्ली-7)

आर्यसमाज का बलिदानी-परम्परा से चोली दामन का नाता रहा है। चाहे आजादी का आन्दोलन हो, चाहे गोरक्षा का आन्दोलन हो, चाहे हिन्दी रक्षा का आन्दोलन हो, चाहे निजाम के विरुद्ध हैदराबाद का आन्दोलन हो, चाहे संस्कृत रक्षा का आन्दोलन हो, इन सबमें आर्यसमाज ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। १२ मई रविवार, २०१३ का दिन आर्यसमाज के इतिहास में एक और नया अध्याय जोड़ गया है। 'पाखंड के सरगना रामपाल दास के विरुद्ध आर्यसमाज जब शान्तिपूर्ण तरीके से अपना विरोध प्रदर्शन कर रहा था तो प्रशासन को यह प्रदर्शन भी नागवार गुजरा तथा प्रदर्शनकारियों और सुरक्षाकर्मियों के बीच हुए संघर्ष में तीन होनहार महानुभावों का बलिदान हो गया। बलिदानियों की इस सूची में भैयापुरा लाढौत गुरुकुल के उपाचार्य श्री उदयवीर जी शास्त्री, आर्य बालभारती पब्लिक स्कूल पानीपत के पी. टी. आई अध्यापक श्री सन्दीप आर्य तथा ग्राम करौंथा की बहिन प्रोमिला शामिल हैं। घायल होने वाले आर्यों की सूची लम्बी है। दिल्ली से भी अनेक आर्यबन्धुओं ने, माता बहनों एवं आर्यवीरों ने प्रदर्शन में अहम भूमिका/उपस्थिति का इन्द्राज करके दिल्ली की आर्य जनता का सर गर्व से ऊँचा किया। मैं सभी को साधुवाद देता हूं एवं उनके प्रति नतमस्तक हूँ। कुछ सुरक्षाकर्मियों को भी चोटें आई हैं। इस सम्पूर्ण प्रकरण में जो बात मेरे मन में रह-रह कर उठ रही है वो यह है कि जुलाई २००६ में इसी आश्रम में विवाद के चलते एक आर्य युवक सोनू शहीद हो गया था। तब पुलिस को उस आश्रम की तलाशी में न केवल भारी संख्या में आपत्तिजनक वस्तुएं मिली थीं अपितु हत्या का दोषी पाकर रामपाल दास को गिरफ्तार भी किया; कई महीने वह जेल में भी रहा। परन्तु इस बार एकदम विपरीत स्थिति रही। इस बार एक नहीं तीन-तीन बलिदान हुए हैं। अबकी बार गिरफ्तारियाँ भी रामपाल के अनुयायियों की नहीं अपितु आर्यसमाज और ऋषि भक्तों की अधिक हुई हैं। आश्रम को खाली कराके लगभग १०-१५ हजार रामपाल के अनुयायियों को सरकारी बसों से बरवाला पहुँचाया गया; किन्तु इसके विपरीत १२ मई को होने वाले रामपाल दास के विरुद्ध प्रदर्शन में शामिल होने वाले ऋषि एवम् आर्यसमाज के भक्तों को गिरफ्तार किया, जेल में डाला और संविधान की विभिन्न धाराओं के अन्तर्गत केस भी दर्ज किया। शासन-प्रशासन का यह दोहरा मापदण्ड है। विधि द्वारा स्थापित लोकतान्त्रिक मूल्यों का यही सम्मान है? इस पूरे प्रसंग में प्रशासन रामपाल को, उसके अनुयायियों को और उसके आश्रम को बचाने में लगा रहा लेकिन अन्ततः बचा न सका और आर्यसमाज की विजय हुई। कुछ महानुभाव तर्क दे रहे हैं कि आश्रम कोर्ट के आदेश के अनुरूप रामपाल को देना शासन का दायित्व था; आर्यसमाज को उसके विरुद्ध प्रदर्शन नहीं करना चाहिए था। उन महानुभावों की सेवा में बताना चाहता हूँ कि १९८४ के सिख-विरोधी दंगों में आरोपित सज्जन कुमार को भी कोर्ट ने आरोप मुक्त कर दिया था तो क्या कोर्ट के उस आदेश के विरुद्ध सिखभाइयों ने प्रदर्शन नहीं किया था? क्या ऐसा भी होता है कि कोर्ट के फैसले का एक द्वारा विरोध लोकतान्त्रिक प्रक्रिया का हिस्सा है और दूसरे द्वारा

किया गया विरोध-प्रदर्शन लोकतान्त्रिक-परम्परा का उल्लंघन है? ऐसे लोगों की नसीहतों के लिए क्या आर्यसमाज ही रह गया? इस प्रकार की तथाकथित मर्यादा को निभाने की सारी जिम्मेदारी क्या आर्यसमाज ही लेगा? औरों की कोई जिम्मेदारी नहीं? हर आन्दोलन की, हर विरोध की, हर सघंर्ष की, हर क्रान्ति की, हर विद्रोह और बगावत की कीमत आर्यसमाज सदा चुकाता रहा है तथा आगे भी चुकाता रहेगा। जाना तो संसार से एक दिन सबको है लेकिन जिसके जाने से समाज को, राष्ट्र को, बलिदान की प्रेरणा मिले उनका आना भी सार्थक और जाना भी सार्थक है। भर्तृहरि जी ने ठीक ही लिखा है कि

"परिवर्तनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंश समुन्नतिम्"।

अर्थात् इस परिवर्तनशील संसार में कौन नहीं मरता व कौन जीवन (जन्म) ग्रहण नहीं करता अर्थात् सब मरते हैं और जीवन ग्रहण करते हैं। लेकिन मरना, जीना उन्हीं का सार्थक है, जिनके जन्म से वंश, जाति, समाज और राष्ट्र उन्नति को प्राप्त करते हैं/प्रेरणा लेते हैं। आचार्य उदयवीर शास्त्री गुरुकुल भैयापुर लाढ़ौत में उपाचार्य के पद पर अपनी सेवाएं गुरुकुल को दे रहे थे। छात्रों को आधुनिक शिक्षा के साथ-साथ प्राचीन शिक्षा भी प्रदान कर रहे थे। उन्होंने उत्तर काशी जाकर साधना और दर्शन शास्त्रों के स्वाध्याय में भी कुछ काल व्यतीत किया। माता-पिता के लाडले इस सपूत ने आर्यसमाज द्वारा चलाए जा रहे पाखण्ड के विरुद्ध अभियान में अपने प्राणों की आहूति दे दी। दूसरे आर्य युवक सन्दीप कुन्डू जिनकी आयु अधिक से अधिक तीस वर्ष की रही होगी। माता-पिता से आर्यसमाज के संस्कारों की सौगात प्राप्त कर गाँव के युवाओं को उससे जोड़ने में अहर्निश प्रयासरत थे। इसके लिए वह गाँव में युवाओं के साथ मिलकर साप्ताहिक सत्संग का आयोजन करते थे तथा युवाओं को नशे से, कुसंस्कारों से बचने की प्रेरणा देते थे। महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के प्रति इनके मन में अगाध श्रद्धा थी। इन्होंने अपने जीवन को समाज से पाखण्ड के अन्धकार को मिटाने के लिए क्रान्तियज्ञ में हवि बनाकर अपने-आपको हविष्मन्तों की सूची में शामिल कर लिया। तीसरा बलिदान उसी ग्राम (करौंथा) की बहिन प्रोमिला का रहा, जिन्होंने आश्रम में धर्म और आध्यात्मिकता की आड़ में संचालित होने वाली अनैतिक, अवैध गतिविधियों के विरुद्ध चलाए गए आर्यसमाज के अभियान को अपने प्राण न्यौछावर करके शक्ति प्रदान की। बहिन प्रोमिला का बलिदान यह साबित करने के लिए काफी है कि इस तथाकथित सन्त का विरोध केवल आर्यसमाज ही नहीं अपितु वहाँ के आस-पास के लोग भी कर रहे हैं। यहाँ अपने पाठकों को यह बताना चाहूँगा कि रामपाल का विरोध आर्यसमाज द्वारा जिस कारण किया जा रहा है ग्रामीणों, पंचायतों एवं विभिन्न खापों द्वारा किया जा रहा विरोध का कारण एकदम अलग है। बिना किसी प्रमाण के आर्यसमाज के सार्वकालिक सार्वभौमिक सिद्धान्तों पर अनपढ़ गंवारों जैसी अनाप-शनाप अमर्यादित टिप्पणी करना, सत्यार्थ प्रकाश को बिना जाने ही उलूल-जलूल बकवास करना, महर्षि दयानन्द सरस्वती पर टिप्पणी करना इत्यादि ऐसे कारण रहे जिन्होंने आर्यसमाज को मजबूर कर दिया। मैथिलीशरण गुप्त ने ठीक ही लिखा है-

इच्छा रहित भी वीर पाण्डव रत हुए रण में अहो।
कर्तव्य के वश विज्ञजन करते नहीं क्या-क्या अहो।

उपरोक्त बिन्दु रामपाल के साथ विवाद का कारण बने। लेकिन ग्रामीणों के साथ, पंचायतों के साथ और विभिन्न खापों के साथ विवाद के जो मुख्य कारण बने उनमें प्रमुख बिन्दु जो थे वो ये कि आश्रम की जमीन विवादित थी, इसके बाद आश्रम में अनेक प्रकार की अनैतिक

शेष पृष्ठ १५ पर

हमने क्या खोजा- भारत या इण्डिया? (३)

(राजेशार्य आट्टा, ११६६, कच्चा किला, साढौरा, यमुनानगर-१३३२०४)

प्रिय पाठकवृन्द! 'भारत की खोज' पुस्तक के लेखक ने प्रारम्भ में ही यह लिखा है कि मैं भारत तक पश्चिम के रास्ते से होकर पहुँचा था। इसका अर्थ है कि लेखक ने भारत की खोज पाश्चात्य लेखकों के अंग्रेजी ग्रन्थों के माध्यम से की और भारत के मूल निवासी आर्यों, उनके ग्रन्थों, उनकी संस्कृति-सभ्यता व इतिहास के विषय में जो धारणा पश्चिमी विद्वानों की थी, उस धारणा के पीछे छिपी मानसिकता को न समझकर, उसे ज्यों का त्यों स्वीकार कर 'भारत की खोज' पुस्तक लिखी गई। लोकमान्य तिलक भी इसी षड्यंत्र का शिकार हुए थे और वे अपने पूर्वज आर्यों को विदेशी (उत्तरी ध्रुव के निवासी) सिद्ध कर बैठे। बाबू उमेशचन्द्र विद्यारत्न को उनकी इस मिथ्या धारणा को बदलने के लिए पाँच दिन उनके पास रहकर खूब तर्क-वितर्क करना पड़ा था। अपनी भूल स्वीकार करते हुए तिलक जी ने बड़ी सरलता से कहा था- "हमने मूल वेद नहीं पढ़े, हमने तो केवल साहब लोगों के अनुवाद पढ़े हैं।"

मूल ग्रन्थ को पढ़े बिना अनुसन्धान नहीं हो सकता। यही कारण है कि इस लेखक ने भी आर्यों के ग्रन्थों के विषय में लिखा है- "वेद की उत्पत्ति 'विद्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है जानना। अतः वेद का सीधा-सादा अर्थ है अपने समय के ज्ञान का संग्रह। उनमें न मूर्ति पूजा है, न देव-मंदिर। वैदिक युग के आर्यों में जीवन के प्रति इतनी उमंग थी कि उनहोंने आत्मा पर बहुत कम ध्यान दिया। वे मृत्यु के बाद किसी प्रकार के अस्तित्व में बहुत अस्पष्ट ढंग से विश्वास करते थे।

समीक्षा- वेद शब्द की उत्पत्ति 'विद्' धातु से तो हुई है, पर विद् के तो ज्ञान, लाभ, सत्ता और विचार आदि में चार अर्थ होते हैं, केवल जानना नहीं और न ही वेद का सीधा अर्थ अपने समय के ज्ञान का संग्रह करना होता है। वेद शब्द के अर्थ और विषयवस्तु के बारे में वेद का अधिकारी विद्वान् ही बता सकता है। अपनी जानकारी बढ़ाने के लिए हमें उनसे ही पूछना चाहिए।

इस युग के महान ऋषि स्वामी दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका में वेद का अर्थ लिखा है- "विदन्ति जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति, विन्दन्ति विन्दन्ते लभन्ते, विन्दते विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्यविद्या यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः।

अर्थात् जिनके पढ़ने से यथार्थ विद्या का विज्ञान होता है, जिनको पढ़के विद्वान् होते हैं, जिनसे सब सुखों का लाभ होता है और जिनसे ठीक-ठीक सत्यासत्य का विचार मनुष्यों को होता है, इससे ऋकृ संहितादि का वेद नाम है।"

वेद सार्वकालिक व सार्वभौमिक ईश्वरीय ज्ञान है केवल ऋषियों के समय के ज्ञान का संग्रह नहीं। परमात्मा द्वारा उपदेश दिये बिना कोई भाषा, कोई ज्ञान या कोई ग्रन्थ रचना करना आदि मानव (जैसा असभ्य, मूर्ख, अज्ञानी, अशिक्षित व बन्दर जैसा पाश्चात्यों द्वारा बताया जाता है) द्वारा सम्भव नहीं है। ध्वनि व संकेतों का अर्थ निश्चित किये बिना संकेतों को समझना पशु जैसे अज्ञानी आदि मानच द्वारा सम्भव नहीं है। आज भी भाषा केवल मानव के पास है, अन्य किसी जीव-जन्तु ने इस विषय में उन्नति नहीं की। जबकि अन्य जीव-जन्तु

ईश्वरप्रदत्त अपने ज्ञान में मनुष्य से बहुत आगे हैं।

अतः ज्ञान (वेद) ओर भाषा ईश्वरीय देन है।

यह ठीक है कि वैदिक युग के आर्यों में जीवन के प्रति उमंग थी, पर यह कहना उचित नहीं है कि उन्होंने आत्मा पर बहुत कम ध्यान दिया और मृत्यु के बाद (आत्मा) के अस्तित्व में अस्पष्ट विश्वास किया। क्या जीवन की उमंग परलोक मानने वालों में नहीं होती? क्या आत्मा के बिना जीवन सम्भव है? फिर आत्मा की उपेक्षा कर जीवन में उमंग कैसे होगी? मृत्यु के बाद भी चलने वाली आत्मा की यात्रा को आर्यों ने बिल्कुल स्पष्ट ढंग से स्वीकार किया है। यही नहीं, वे तो इस यात्रा के लक्ष्य (मुक्ति) के विषय में भी सन्देह रहित थे। यह उनके मूल ग्रन्थों, व्याख्या ग्रन्थों, उन पर आधारित उपनिषद् ग्रन्थों, ऐतिहासिक (रामायण-महाभारत आदि) ग्रन्थों आदि में अच्छी तरह वर्णित है। कोई पढ़कर तो देखे-

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् .... तमेव विदित्वाति मृत्युमेति....। (यजु० ३१-१८)

तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः। (अथर्व. १०-८-४४)

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति।।
(यजु० ४०-६)

न च पुनरावर्तते।। (छान्दो० ८-१५-१)

आत्मा वा अरे द्रष्टव्य- श्रोत्व्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। (बृहदा० २-४-५)

इहचेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।

भूतेषु भूतेषु विचित्यधीराः, प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति। (केनोप० २-५)

असूर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।।
(यजु० ४०-३)

त्र्यम्बकं यजामहे ....उर्वारुकमिव बन्धनान्मुक्षीय माऽमृतात्।। (यजु० ३-६०)

यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।
(गीता, १५-६)

न जायते म्रियते वा .... न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। (गीता २-२०)

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः।
आहाराः विविधाः भुक्ताः पीता नानाविधा स्तनाः।
मातरो विविधाः दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा।।
अवाड्.मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः।
सांख्ययोगं च समभ्यस्येत् पुरुषं वा पञ्चविंशकम्।।
(निरुक्त अ० १४/६)

सम्भवतः वेदिक साहित्य को देखे बिना लिखने के कारण ही पं० भगवतद्दत्त जी को श्री जवाहरलाल नेहरू के विषय में लिखना पड़ा हो- "वे अपने अल्पज्ञान के कारण ही ऐसा कहते हैं। उन्होंने केवल पाश्चात्य विचार का ही थोड़ा सा अध्ययन किया है। प्राचीन भारतीय इतिहास जो यहाँ की संस्कृति का परिचायक है, उन्होंने नहीं पढ़ा। वे तो आर्यों को भारत का आदि (पहले) वासी ही नहीं समझते। उन्हें वेद के महत्व का अणुमात्र भी ज्ञान नहीं है। अतः उनका ऐसा कथन विद्वानों के सम्मुख उपहासास्पद है।" (पं० भगवद्दत्त जी, रिसर्च स्कॉलर, पृ० ६५)

"बहुत से पश्चिमी लेखकों ने इस ख्याल को बढ़ावा दिया है कि भारतीय लोग परलोक परायण हैं। मैं समझता हूँ कि हर देश के निर्धन और अभागे लोग एक हद तक परलोक में विश्वास करने लगते हैं- जब तक कि वे क्रांतिकारी नहीं हो जाते। यही बात गुलाम देश के लोगों पर लागू होती है।......

"परंतु इतना निश्चित है कि वैदिक संस्कृति की

मूल पृष्ठभूमि परलोकवादी या इस विश्व को निरर्थक मानने वाली नहीं है।"

समीक्षा- यह तो ठीक है कि भारतीय लोग केवल परलोक के लिए वर्तमान जीवन की उपेक्षा करने वाले नहीं हैं। क्योंकि यदि ऐसा हुआ होता, तो भवन-निर्माण आयुर्वेद-चिकित्सा, नौ विमान शास्त्र, व्यापार, राजनीति, खगोल, गणित, साहित्य, आदि की इतनी उन्नति भारतीयों ने न की होती, पर परलोक की भी उन्होंने उपेक्षा नहीं की। लेखक की यह मान्यता हास्यास्पद है कि निर्धन और अभागे लोग ही परलोक पर विश्वास करते हैं। क्योंकि भारत के लोग प्राचीन काल से ही आध्यात्मिक अर्थात् परलोक में विश्वास करते रहे हैं, तब वे न तो गरीब थे ओर न ही गुलाम। लेखक ने भी स्वीकार किया है कि उनमें जीवन के प्रति उमंग थी। क्या क्रांतिकारी परलोक में विश्वास नहीं करते और क्या गरीब लोग क्रांतिकारी नहीं होते? भारत के क्रांतिकारी तो पुनः भारत में पैदा होने की आशा और विश्वास के साथ फाँसी चढ़ गये। केवल लेनिन व उससे प्रभावित कुछ लोगों के आधार पर यह सिद्धान्त नहीं बनाया जा सकता कि क्रांतिकारी नास्तिक होते हैं।

वैदिक दर्शन ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान के समन्वय को लेकर चला है और मानव जीवन को सार्थक करने के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के पुरुषार्थ चतुष्ट्य को स्वीकार किया है। अंतः वैदिक संस्कृति में इहलौकिक और पारलौकिक उन्नति का समन्वय है, पर परलोकवादी का अर्थ इस विश्व को निरर्थक मानने वाला नहीं होता।

१६ "इसी समय (आरंभ में) उस विशिष्टतावाद और छुआछूत की प्रवृत्ति का आरंभ दिखाई पड़ता है जो बाद में बढ़ते-बढ़ते असह्य हो जाती है। यही प्रवृत्ति आधुनिक युग की जाति-व्यवस्था है। यह व्यवस्था एक खास युग की परिस्थिति के लिए बनाई गई। किंतु बाद में यह उसी समाज-व्यवस्था और मानव-मन के लिए कारागृह बन गई।"

समीक्षा- वास्तव में वेदों में मानव का इतिहास नहीं है। वेदों में इतिहास मानने व ढूँढने वाले भी यह सिद्ध नहीं कर पाये हैं कि आरंभ (वैदिक काल) में आर्यों में छुआछूत की प्रवृत्ति थी। स्वार्थी दुष्ट विद्वानों ने पौराणिक काल (गुप्त काल के आस-पास) में अपने दूषित विचारों का अड़ंगा पुराणों की तरह सभी प्राचीन ग्रन्थों, मनु आदि स्मृतियों, रामायण, महाभारत, ब्राह्मण ग्रन्थ आदि में भी डाल दिया (क्योंकि उनमें परस्पर विरोधी बातें मिलती हैं जो यह सिद्ध करती हैं कि ये ग्रन्थ किसी एक लेखक ओर एक समय की रचना नहीं हैं)। वैदिक संस्कृति को नीचा दिखाने वालों ने उस अड़ंगे को प्रमाण मानकर नये युग की परम्पराओं और विचारों को प्राचीन युग पर थोंप दिया। जबकि रामायण-महाभारत को काल्पनिक काव्य सिद्ध करने के लिए ये लोग मानते हैं कि वर्तमान में उपलब्ध ये ग्रन्थ अलग-अलग समय में विभिन्न कवियों द्वारा बढ़ाए गए हैं। स्वयं लेखक ने भी अगले पृष्ठों में लिखा है- "प्राचीन भारत के दो महाकाव्यों- रामायण और महाभारत को रूप ग्रहण करने में शायद सदियाँ लगी होंगी और उनमें बाद में भी टुकड़े जोड़े जाते रहे।"

हम इससे सहमत हैं, पर यह सभी ग्रन्थों के विषय में है अर्थात् यदि मनु स्मृति में शूद्र (जन्मना) के प्रति घृणित व्यवहार करना लिखा है तो यह मनु काल की परम्परा नहीं है, क्योंकि वहाँ कर्मणा व्यवस्था है, जिसमें शूद्र योग्यता पाकर ब्राह्मण का सम्मान पा सकता है। हाँ, जिस काल (६०० ई.पू.) में यह कुरीति (छुआछूत) उत्पन्न हुई बताई जाती है, वहाँ यह कुछ सम्भव है। पर वह वैदिक काल नहीं, अपितु आर्यों की परम्परा के

अनुसार महाभारत युद्ध (३१३८ ई.पू.) के बाद का पतन काल था। छुआछूत की भयानक अवस्था तो मुस्लिम आक्रमण के समय हुई। क्योंकि मुस्लिम बादशाहों की औरतें पर्दों में रहती थीं और वे आम लोगों की तरह शौच आदि के लिए बाहर नहीं निकलती थीं। बादशाहों ने युद्ध में पराजित लोगों को अपना गुलाम बनाकर मैला उठाने के इस गर्हित कार्य के लिए मजबूर किया। इस बात की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि देश भर में मल सफाई करने वाले वर्ग की कई उपजातियाँ प्राचीन राजवंशों से मिलती जुलती हैं, जैसे-चौहान, चन्देल, चन्देलिया, रावत आदि। 'मार-मार कर भंगी बना देना' मुहावरा वहीं से चला है। परिस्थिति कहें या हिन्दू समाज का पागलपन कि उसने अपने ही अंग से दूरी बढ़ा ली। धीरे-धीरे अन्य भी बहुत सी जातियाँ अछूत बना दी गईं। पर इसका मूल वैदिक संस्कृति नहीं है।

१७. "इतिहास के इस लंबे दौर में भारत अलग-थलग नहीं रहा। ईरानियों और यूनानियों से, चीनी और मध्य एशियाई तथा अन्य लोगों से उसका संपर्क बराबर बना रहा। तीन-चार हजार वर्षों का यह सांस्कृतिक विकास और उसका अटूट सिलसिला अद्‌भुत है।"

समीक्षा- यह बिल्कुल सत्य है कि संसार के लिए भारत कभी अनजाना नहीं रहा। फिर यह प्रचार क्यों किया जाता है कि वास्को डिगामा ने भारत की खोज की? और उस खोज का उद्देश्य क्या था? खोज का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा? क्या वास्को डिगामा केवल साहसिक नाविक ही था अथवा कुछ और भी?

१८. "यह कृति (महाभारत) परंपराऔर दंतकथाओं का तथा प्रचीन भारती की राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं का विश्वकोश है।.... आर्यों में स्त्रियों के अनेक विवाह का चलन नहीं था, किंतु महाभारत की कथा की एक विशेष नायिका एक साथ पाँच भाइयों की पत्नी है।"

समीक्षा- द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की पत्नी थी, यह भी दंतकथा ही है, क्योंकि इस घटना का मूल आधार बहुत ही कोमल है। ऐसा होना उस समय भी विचित्र और इतना ही घृणित था, जितना आज है। महाभारत की अन्तःसाक्षी सिद्ध करती है कि द्रौपदी का पति युधिष्ठिर ही था, पाँचों भाई नहीं।

१६. "महाभारत में हिंदुसतान की (या जिसे दंतकथाओं के अनुसार जाति के आदि पुरुष भरत के नाम पर भारतवर्ष कहा जाता है) बुनियादी एकता पर बल देने की निश्चित कोशिश की गई है। इसका एक और पहले का नाम था आर्यावर्त्त, यानी आर्यों का देश किंतु यह नाम मध्य-भारत में विंध्य पर्वत तक फैले उत्तर-भारत के इलाके तक सीमित था।.... वह लड़ाई (महाभारत) भारत (या संभवतः उत्तरी भारत) पर एकाधिकार स्थापित करने के लिए लड़ी गई थी।"

समीक्षा- महाभारत में भारत है हिंदुस्तान नहीं। यदि भारत नाम दंतकथाओं के आधार पर है, तो प्रसिद्ध युद्ध और ग्रन्थ का नाम भारत या महाभारत कैसे हुआ? भरत जाति का आदि पुरुष नहीं था। महाभारत के अनुसार आर्यावर्त का नाम पुरुवंश के शकुन्तला पुत्र भरत के नाम से भारत पड़ा।, जबकि वायुपुराण के अनुसार ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम से भारत पड़ा। पर यह निश्चित है कि भारत का भरत से सम्बन्ध अवश्य है और यह नाम यहाँ के प्राचीन ऋषियों व कवियों से मान्यता प्राप्त भी है। जेसे-प्रतिदिन संकल्प पाठ में बोला जाता है-

"...... जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्उे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गतेः.... ।"

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।

(विष्णु पं.)

गायन्ति देवाः किल गीतकानि

धन्यास्तु ये भारत भूमिभागे। (विष्णु पु० २-३-२४)

जबकि हिन्दुसतान का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है और न वह यहाँ के विद्वानों के ग्रन्थों में स्थान प्राप्त है। यह चाहे कितना भी पुराना हो और इसका अर्थ चाहे कुछ भी हो, पर यह सत्य है कि यह नाम विदेशियों द्वारा दिया गया है। ठीक है कि मनुस्मृति में लिखे आर्यावर्त की सीमा विन्ध्याचल पर्वत तक है। हो सकता है कि मनु के समय विन्ध्याचल वर्तमान के पूर्वी और पश्चिमी घाट हों। क्योंकि वाल्मीकि रामायण किष्किंधा काण्ड के अनुसार ऐसा ही सिद्ध होता है-

सह ताराङ्.गदाभ्यां तु गत्वा स हनुमान् कपिः।

सुग्रीवेण यथोद्दिष्टं तं देशमुपचक्रमे।।

स तु दूरमुपागम्य सर्वैस्तैः कपिसत्तमैः।

विचिनोतिस्म विन्ध्यस्य गुहाश्च गहनानि च।। (४८-१,२)

अर्थात् सुग्रीव के आदेशानुसार हनुमान तारा एवं अंगद को साथ लेकर दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े। हनुमान उन वानररश्रेष्ठों के साथ सीता को खोजते हुए बहुत दूर पहुँचकर विन्ध्याचल की घाटियों की गहन गुफाओं में सीता को खोजने लगे।"

और भारत की सामान्य सी भौगोलिक जानकारी रखने वाले लोग भी जानते हैं कि यह किष्किंधा कर्नाटक (वर्तमान जिले कोप्पल और बेल्लारी) में थी और इससे दक्षिण की ओर विंध्याचल का वर्णन किया है, तो महर्षि दयानन्द ने ठीक ही लिखा है- "हिमालय की मध्य रेखा से दक्षिण ओर पहाड़ों के भीतर और रामेश्वर पर्यन्त विन्ध्याचल के भीतर जितने देश हैं उन सबको आर्यावर्त्त इसलिये कहते हैं कि यह आर्यावर्त्त देव अर्थात् विद्वानों ने बसाया और आर्यजनों के निवास करने से आर्यावर्त्त कहाया है।" (सत्यार्थ प्रकाश अष्टम् समु०)

लेखक ने महाभारत युद्ध को भारत या उत्तरी भारत पर एकाधिकार स्थापित करने के लिए लड़ा गया माना है। जबकि यह मात्र कौरवों द्वारा अन्याय से छीने गये अपने राज्य को प्राप्त करने के लिए ही पाण्डवों द्वारा लड़ा गया था। यदि दुर्योधन पाँच गाँव भी पाण्डवों को दे देता, तब भी यह युद्ध रुक सकता था। उत्तरी भारत पर अधिकार तो बहुत दूर की बात है। यह अलग बात है कि युद्ध के परिणामस्वरूप युधिष्ठिर का एकछत्र राज्य स्थापित हो गया।

इससे पूर्व उपनिषदों के विषय में लेखक ने लिखा है-

२० "उपनिषदों का समय ईसा पूर्व ८०० के आसपास से माना जाता है।.... उपनिषदों का सामान्य झुकाव अद्वैतवाद की ओर है और सारे दृष्टिकोण का इरादा यही मालूम होता है कि उस समय जिन मतभेदों के कारण भयंकर वाद-विवाद हो रहे थे उन्हें किसी तरह कम किया जाए।"

समीक्षा- जो विदेशी लेखकों की तर्ज पर वेदों का काल १५०० ई०पू० मानते हों, उनके लिए सब सम्भव है। उपनिषदों में लगभग सर्वत्र त्रैतवाद की गूँज सुनाई देती है। हाँ, मान्यता प्राप्त ग्यारह उपनिषदों के कुछ अंशों को और बहुत बाद तक लिखे गये साम्प्रदायिक उपनिषदों को छोड़कर अद्वैतवाद (केवल ईश्वर की सत्ता को मानना) की प्रमुखता नहीं है। देखिये, जहाँ प्रार्थना है, वहाँ निश्चित रूप से अद्वैतवाद नहीं है। क्योंकि याचक, दाता और याच्य वस्तु का होना अनिवार्य है। अन्यत्र भी देखिये-

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा, एकं रूपं बहुधा यः करोति।

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं

नेतरेषाम्।। (कठो० ५-१२)

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्ननन्योऽभिचाकशीति।।
(मु० ३-१-१)

अर्थात् वह परमात्मा एक है, सारे ब्रह्माण्ड को वश में रखने वाला है, सब प्राणियों के अन्दर बैठा हुआ (सर्वान्तर्यामी) है; जो एक रूप वाली प्रकृति को अनेक रूपों वाली बनाता है। जो धीर पुरुष उसे अपनी आत्मा में स्थित देखते हैं उन्हें शाश्वत सुख मिलता है, दूसरों को नहीं।"

"सुन्दर पंखों वाले दो पक्षी हैं जो साथ-साथ रहते हैं। एक दूसरे के सखा हैं। दोनों (ईश्वर, जीव) एक ही वृक्ष (प्रकृति) पर निवास करते हैं उन दोनों में एक पिपल के स्वादिष्ट फल को खा रहा है और दूसरा बिना खाये सब कुछ देख रहा है।"

हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पश्चिम के तिथि निर्धारण के दृष्टिकोण ने हमारे इतिहास को प्राचीनता से घटा दिया है। अन्यथा मुख्य उपनिषद् गीता से बहुत पहले लिखे जा चुके थे। क्योंकि उपनिषदों के कई श्लोक और कई का भाव गीता में मिलता है और यह भी प्रसिद्ध है-

सर्वोपनिषदो गावः दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

आदि शंकराचार्य का काल ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दी भारतीय परम्परा के अनुसार सिद्ध है, पर उसे आठवीं शताब्दी (७८८-८२० ई.) माना जा रहा है। आश्चर्य है कि हम अपने देश के इतिहास की प्राचीनता के लिए उन्हें प्रमाण मान रहें हैं, जिनके लिए ४००४ ई० पू० सृष्टि बनी हो। जबकि वैज्ञानिक भी हमारी मान्यता (पृथ्वी की आयु लगभग २ अरब वर्ष) को मान चुके हैं, तो हम यह हठ क्यों करते हैं कि सारी धरती पर सभ्यता कुछ हजार वर्ष से ही आई है?

(क्रमशः)

❑❑

पृष्ठ ६ का शेष

गतिविधियों का संचालन होता था। अनेक बार शासन को सूचित करने के बाद भी, रामपाल को चेताने के बाद भी प्रशासन और रामपाल पर इन निवेदनों का कोई असर नहीं हुआ। इन दोनों की हठधर्मिता के जो दुष्परिणाम हुए वे पूरे देश और दुनियां ने देख लिए। खबर यहाँ तक है कि जिस प्रकार जुलाई २००६ में इसका विरोध हुआ था तब इसके आश्रम से हुई गोलीबारी का सोनू शिकार हुआ था तथा इस बार तीनों जो गोलियाँ लगीं वे आश्रम के अन्दर से की गई फायरिंग का परिणाम थीं। हमारे दो आर्य युवक और एक हमारी बहिन प्रोमिला ने अपने जीवन को सत्य को लिए समर्पित कर यश की श्री को प्राप्त कर **'सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयताम्'** को सार्थक कर दिया। आने वाली पीढ़ी को बलि का पाठ और शूर धर्म का पाठ पढ़ा दिया है और यही असली शूर धर्म है जिससे समाज को क्रान्ति की, समाज और धर्म पर मर-मिटने की प्रेरणा मिलती है, कुरुक्षेत्र में श्री रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं कि -

शूर धर्म है अभय दहकते अंगारों पर चलना।
शूर धर्म है शोणित असि पर धरकर चरण मचलना।।
आग हथेली पर सुलगाकर, शिर हविष चढ़ाना।
शूर धर्म है जग को अनुपम बलि का पाठ पढ़ाना।।

अथर्ववेद के अनुसार – दीर्घं न आयु प्रतिबुध्यमानाः वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम" अर्थात् लम्बी प्राप्त करते हुए हे-मातृभूमे! हम सब तेरे......... इस उक्ति को तीनों ने

कहाँ देखते हो? किधर जा रहे हो?

(राजेन्द्र 'जिज्ञासु' वेद सदन, अबोहर-152116)

अमृतसर में एक स्वाध्यायशील कर्मठ आर्यसमाजी महाशय गंगाराम जी होते थे। प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों में उनकी चाँदनी चौक दिल्ली में दुकान होती थी। उन्हें आर्यसमाज के सब बड़े-बड़े विद्वान् व नेता जानते थे। उनका अध्ययन सैद्धान्तिक ज्ञान वर्तमान के कई बड़े बड़े प्रोफेसरों से भी कहीं अधिक था। एक बार मैंने उनसे पूछ लिया कि आप आर्यसमाजी कैसे बने? उन्होंने मुझे बड़ा रोचक उत्तर दिया।

बोले, मेरी दादी आर्यसमाज की घोर निन्दक थी। मुझे पता ही नहीं था कि आर्यसमाजी क्या मानते हैं और कैसे होते हैं। दादी हमें भूतों, प्रेतों, कबरों आदि की कहानियाँ सुनाया करती थी। जब हम घर से निकलकर कहीं बाहर जाते तो दादी बहुत आग्रहपूर्वक कहती कि आर्यसमाजी के साथ तांगे में नहीं बैठना। आर्यसमाजी से परे होकर ही बैठना। ऐसी बातें सुन सुनकर गंगाराम जी ने एक बार कहा, दादी! ताँगे में बैठी साथ वाली सवारी आर्यसमाजी है, इसका पता कैसे लग सकता है?

दादी भी अपने विषय की विशेषज्ञ थी। झट से बोली, आर्यसमाजी का परिचय तो अपने आप ही हो जाता है। जो भूत से, डाकिन से, प्रेत से, मज़ार से, मियाँ से- किसी से न डरे, वह आर्यसमाजी होता हे। जो गंगा जी को, तीर्थ को मृतक श्राद्ध को न माने वह आर्यसमाजी होता है। आर्यसमाजी क्या मानता है, यह सम्भवतः दादी को भी पता नहीं था। दादी को क्या पता था कि आगे चलकर मेरा पोता आर्यसमाज की नींव का एक पत्थर बनेगा। सचमुच आर्यसमाजी का व्यवहार उसकी धर्मधुन उसकी पहचान होती थी। उसको अपने मिशन पर, अपने सिद्धान्तों पर, अपने समाज पर, अपने विद्वानों पर, अपने हुतात्माओं पर, अपने इतिहास पर अभिमान होता था। इसके कुछ रोचक प्रसंग आगे देता हूँ।

गुरुदत्त भवन लाहौर में पंजाब प्रतिनिधि सभा के उपदेशक महानुभाव स्वामी वेदानन्द जी को घेरे बैठे थे। श्री स्वामी जी सब विद्वानों का शङ्का समाधान करते हुए उनकी ज्ञान वृद्धि कर रहे थे। पं० ओ३म्प्रकाश जी वर्मा तब कार्यक्षेत्र में नये-नये थे। इन्होंने कहा, स्वामी जी अभी १४-१५ भाषायें जानते हैं। वेद शास्त्र, मत पंथों के गम्भीर विद्वान् हैं। आप यदि ऋषि के समय में होते तो आप जैसा विद्वान् शिष्य पाकर महर्षि कितना अभिमान करते!

इस पर प्रकाण्ड विद्वान् वेदानन्द बोले, "ऋषि मुझे पास बैठने का तो अधिकार देते। यह कहते कि यह कुछ समझता है। मेरी पीठ थपथपाते। मुझ पर अभिमान नहीं करते।"

पाठक वृन्द! कितनी विनम्रता तथा माधुर्य है इन शब्दों में! जब ला. लाजपतराय को देश से निष्कासित किया गया तो उस समय कालका (हरियाणा) में महात्मा हंसराज के नेतृत्व में डी.ए.वी. के एक शिष्ट मण्डल ने गवर्नर से जाकर कहा कि हमारा लाला लाजपतराय से कुछ भी लेना-देना नहीं, हम तो सरकार के साथ हैं। वैद्य गुरुदत्त और भाई परमानन्द ने यह दुःखद कायरतापूर्ण घटना अपने साहित्य में दी है।

जब लाला जी को माण्डलों से छोड़ा गया तो

देशवासियों के दबाव में डी.ए.वी. कालेज में भी उनका भाषण करवाना पड़ा। वह ऐतिहासिक भाषण कहीं मिलता नहीं था। अब मैंने खोज लिया है। उसमें लाला लाजपतराय के बड़प्पन का एक एक प्रसंग ऐसे मिलता है। लाला जी ने तब कहा कि लोग मुझ से पूछते हैं और पत्र भी लिखते हैं कि इन लोगों ने तो आपसे द्रोह किया। इन लोगों ने आप से दगा (छल) किया आप फिर भी इनके बुलाने पर यहाँ आये हैं?

तब लालाजी ने कहा, "मैंने इन्हें क्षमा किया।" फिर कहा कि मैं इन संस्थाओं से खिंचकर आर्यसमाज में नहीं आया था। मुझे आर्यसमाज ने खींचा। "मैंने आर्यसमाज को नही बनाया, आर्यसमाज ने मुझे बनाया है।"

यह है बड़ों का बड़प्पन! आज जो लम्बा भाषण दे लेता है, जो ऋषि दयानन्द अथवा आर्यसमाज पर एक आध पुस्तक लिख देता है वह निर्लज्जतापूर्वक यह लिखता है कि यह मेरा आर्यसमाज पर उपकार है। यह कहते हुए कई व्यक्ति अपना अपमान मानते हैं कि उन्हें आर्यसमाज ने बनाया है। मानों ऐसे लोग तो उम्मी हैं। इन्हें आर्यसमाज से कुछ नहीं मिला। यह तो जब जन्मे थे तभी सर्वज्ञ थे।

हरियाणा के एक भजनोपदेशक ने मेरे सामने किसी से कहा कि मैं प्रकाश कवि रत्न या पं० बस्ती राम अथवा भीष्म स्वामी के गीत नहीं गाता। मैं तो अपने बनाये हुए गीत ही गाता हूँ। एक अन्य भजनीक को कहीं एक विद्वान् ने कविरत्न प्रकाश, देशराज व पं० अमींचन्द्र जी के भजन भी सुनाने को कहा तो उसने भी डंके की चोट से कुछ ऐसी ही बातें कहीं। इससे क्या होगा? आर्यसमाज के सब पुराने गीतकार समर्पित भजनोपदेशक सब मर जायेंगे। आर्यसमाज अपनी ज्ञान राशि से वञ्चित हो जावेगा। यह अंह का रोग है और कुछ नहीं। मिशनरी भावना और बात है अपने अहं की तुष्टि और बात है।

अहं का रोग तो इतना बढ़ गया है कि एक लेखक जी को कभी वीर शिरोमणि पं० लेखराम को शहीद, हुतात्मा कहते व लिखते आप नहीं पायेंगे। पं० लेखराम की हत्या हो गई- वह यह तो लिख देगा परन्तु धर्म की बलिवेदी पर पं० लेखरामजी ने जवानी वार दी, सर्वस्व अर्पण कर दिया- ऐसा कहने में वह अपना अपमान मानता है। एक विचित्र बात यह भी देखी है कि ऐसे महानुभाव पं० लेखराम की कोटि के वीर शिरोमणि के लिये 'जी' का प्रयोग करते हुए भी लज्जा व अपमान अनुभव करते हैं। इनको अपनी अंग्रेजी का, पढ़ाई लिखाई का अभिमान है।

इनको इतना ज्ञान नहीं कि पाण्डित्य में, खोज में, चरित्र की उपलब्धियों में आप पं. लेखराम के सामने एकदम बौने हैं। स्वामी श्रद्धानन्द जी, स्वामी स्वतन्त्रातानन्द जी और स्वामी दर्शनानन्द जी तो पण्डित जी पर लिखते हुए भाव विभोर हो जाते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने एक बार पं० लेखराम जी के चरण दबाकर स्वयं को धन्य धन्य माना। स्वामी सत्यानन्द जी ने श्रद्धा भक्ति के सागर में डूबकर ऋषि जीवन लिखा। उसे पढ़कर सहस्रों के जीवन पलट गये। पुस्तकों की सूचियाँ बनाने वाले अपने जीवन में भी कुछ रस न पैदा कर सके किसी को वैदिक धर्मी बना पाना इनके बस की बात कहाँ। सोचो! मित्रो! किधर देखते हो? कहाँ जा रहे हो?

❑❑

सुखी कौन, सुखी कैसे?

रामनिवास गुणग्राहक वैदिक प्रवक्ता मो. 09971171797

कोई मनुष्य कुछ भी काम करता हो, उसके पास जाकर पूछो-बन्धु आप यह काम क्यों कर रहे हो? तो वह बता देगा कि मैं यह काम इसलिए कर रहा हूँ। रास्ता चलते व्यक्ति से पूछो, कहाँ जा रहे हो? वह अपना गन्तव्य स्थान बता देगा। उससे पूछो क्यों जा रहे हो, तो वह जाने का कारण भी बता देगा। कुछ पक्षपाती बुद्धिजीवियों, जिन्हें कम्यूनिष्ट या धर्मनिरपेक्ष कहते हैं, उनको छोड़ दें तो संसार का हर मनुष्य यह मानता है कि यह संसार परमात्मा ने बनाया है। परमात्मा के बारे में लोगों के अलग-अलग मत हैं, लेकिन यह सब मानते हैं कि यह संसार उसी ने बनाया है। जिन्हें परमात्मा के सच्चे स्वरूप का ज्ञान नहीं है, जो परमात्मा की न्याय व्यवस्था को भली-भांति नहीं समझते, वो लोग इस प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ भी नहीं हो सकते कि यह संसार परमात्मा ने क्यों बनाया है? सामान्य जनता और बुद्धिजीवियों को बात छोड़िये संसार के उच्च स्तर के वैज्ञानिक भी 'क्यों' को सुनकर मौन हो जाते हैं। एक व्यक्ति जो कोई छोटा-मोटा काम करे, उसका उद्देश्य तो बता दे, लेकिन परमात्मा ने अनन्त जैसा दिखने वाला यह ब्रह्माण्ड क्यों बनाया, इसका सन्तोषजनक उत्तर न दे सके, तो वह संसार का सच्चा सुख नहीं पा सकता। किसी ने कम्प्यूटर बना दिया, कम्प्यूटर बहुत काम की चीज है, लेकिन जो उसके महत्व को नहीं जानता कि वह किस काम आता है, यह नहीं जानता, कैसे इसका उपयोग किया जाए यह भी नहीं जानता तो वह कम्प्यटर से पूरा लाभ कभी नहीं उठा सकता। उल्टे-सीधे हाथ मारने से वह खराब हो जाए, तो उसी ठीक भी नहीं कर सकता। संसार में हमारी स्थिति ठीक ऐसी ही है। परमात्मा ने संसार किस लिए बनाया, हम इसका भरपूर लाभ कैसे उठाएँ यह सब ठीक प्रकार से जाने बिना हम इस संसार के साथ वैसी ही मनमानी कर रहे हैं, जैसी कि एक कम्प्यूटर से अनजान व्यक्ति कम्प्यूटर के साथ करता है।

सृष्टि का संविधान है वेद। बगत् १००-१२५ वर्षों से हम संसार के साथ मनमानी करते चले आ रहे हैं। आज संसार नामक यह मशीन भी खराब होकर रह गई है। वायु दूषित हो गई, जल प्रदूषित हो गया, रासायनिक खादों और कीटनाशकों के प्रयोग से धरती विषैली होकर रह गई। जीवन देने वाली यह मूलभूत सामग्री जब अपनी जीवनशक्ति खो बैठी तो हमारा जीवन भी अन्तिम बेला में समझना चाहिए। फिर हम क्या करें? हमें चाहिए कि हम संसार को, संसार बनाने वाले की दृष्टि से देखें। जिसने इसे बनाया है, वह इसके बिगाड़, सुधार और सदुपयोग की सब बातें जानता है। हम संसार बनाने वाले को समझे बिना संसार को नहीं समझ सकते और संसार को समझे बिना न तो इसे सुरक्षित रख सकते हैं और न इससे लाभ उठा सकते हैं। इन सबकी तर्कसम्मत जानकारी के लिए हमें वेद पढ़ने व समझने होंगे। चूँकि वेद परमात्मा का ही दिया हुआ ज्ञान है। जैसे एक राष्ट्र का संचालन करने के लिए संविधान की आवश्यकता होती है। राष्ट्र का अनुशासन व शिष्टाचार से लेकर न्याय व्यवस्था व जीवन के

विविध आयाम उसी के अनुरूप संचालित हाते हैं वेद ईश्वर द्वारा दिया हुआ सृष्टि का अटल संविधान है। संसार में सर्वमान्य सदाचार व जनहित के सिद्धान्त वेदों की देन हैं। वेद का ज्ञान रखने वाले हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों का सम्पूर्ण साहित्य संसार के उन्हीं शाश्वत सिद्धान्तों की सतर्क एवं विवेक आधारित व्याख्या करता है। उन्हीं ऋषियों में से एक महर्षि पतञ्जलि यह बताते हैं कि परमात्मा ने यह संसार क्यों बनाया। वे लिखते हैं **'भोगापवर्गार्थं दृश्यम्'** अर्थात् ईश्वर ने यह संसार हमारे अच्छे बुरे कर्मों के सुख-दुःख फल भोगने और सतत् सुख की प्राप्ति, जिसे अपवर्ग या मोक्ष कहते हैं- की प्राप्ति के लिए बनाया है। इस संसार में रहकर हम अपने कर्मों के फल भोगते हैं और कुछ पवित्रात्मा पुरुष ईश्वर की वेदाज्ञा का पालन कर, लोकहित में जीवन लगाकर मुक्ति को पा लेते हैं।

कौन नहीं जानता कि मानव तो क्या प्रत्येक जीव जन्तु की सब इच्छा व कामनाएँ सुख पाने की इच्छा में समा जाती है। कोई पढ़ना चाहता है, नौकरी चाहता है, धन चाहता है, कोठी-कार आदि सुविधाएँ चाहता है। इन सब में वह सुख-शान्ति ढूँढता है। सुख शान्ति न मिले तो ये सारी सुविधाएँ उसके लिए भार बन जाती हैं। यह भार न उठा पाने के कारण धन सम्पत्ति से परिपूर्ण परिवारों के कमजोर हृदय वाले युवक युवतियाँ भी आत्महत्या जेसे कठोर कदम उठा लेते हैं। सुख सबकी पहली और अन्तिम इच्छा है। सुख भी ऐसा जो निरन्तर बना रहे, कभी छूटे ही नहीं। कई लोगों को भ्रम है कि संसार तो दुःख रूप है। ऐसा कहने वाले सीधा ईश्वर पर आरोप लगाते हैं कि उसने हमें सुख पाने की शाश्वत इच्छा देकर दुःख रूप संसार में धकेल दिया। जब संसार में सुख है ही नहीं तो परमात्मा अन्यायकारी और निर्दयी सिद्ध होता है। हम सुख चाहते हैं, उसने हमें ऐसी जगह लाकर डाल दिया जहाँ दुःख ही दुःख है सुख है ही नहीं। दूसरी विचारणीय बात यह है कि यदि संसार में दुःख ही दुःख होता तो संसार में रहने की इच्छा किसी की नहीं होती। दुःख भोगना तो कोई नहीं चाहता, फिर वह दुःख रूप संसार में यहाँ क्या कर रहा है? दिल्ली में ताजमहल या मुम्बई में लाल किला ढूँढना मूर्खता की कोटि में ही आएगा। संसार को दुःख रूप कहने वाले यही तो कर रहे हैं। संसार में दुःख तो है, लेकिन दुःख की अपेक्षा सुख बहुत अधिक है। यदि संसार में सुख न होता, केवल दुःख ही होता तो दुःख भोगने में किसी की रुचि न होने के कारण संसार जीवन-शून्य ही रहता। दूसरी ओर यदि संसार में केवल सुख ही होता तो मानव की निरन्तर सुख प्राप्त करने की कामना यहीं पूरी हो जाती। ऐसा कहीं देखने में नहीं आता। इससे सिद्ध है कि संसार में सुख और दुःख दोनों हैं। विवेकी जन संसार की वस्तुओं का भली-भांति सदुपयोग करके सुख बढ़ा लेते हैं और मूर्ख लोग संसार की उत्तमोत्तम सुख देने वाली चीजों का भी दुरुपयोग करके दुःख बढ़ा लेते हैं। चूँकि संसार से प्राप्त होने वाला सुख पूर्ण सुख नहीं या निरन्तर बना रहने वाला सुख नहीं है, इसलिए ऐसे पूर्ण और निरन्तर बने रहने वाले सुख को पाने के लिए ही ज्ञानी पुरुष ईश्वर की भक्ति करते हैं। जब संसार की कोई वस्तु सदा बनी रहने वाली नहीं, तो उससे प्राप्त सुख सदा बना रहने वाला कैसे हो सकता है? मनुष्य को आधे-अधूरे या

अगले ही पल छूट जाने वाले सुख से सन्तुष्टि नहीं मिलती, इसलिए साँसारिक सुखों से ऊपर उठकर परमात्मा से उस सुख को पाने की प्रार्थना और पुरुषार्थ करता है। परमात्मा कभी नष्ट होने वाला नहीं है, उसके स्वरूप में संसार की वस्तुओं की तरह परिवर्तन भी नहीं आता, वह किसी एक स्थान में भी नहीं रहता कि उससे सुख पाने के लिए वहाँ जाना पड़े। उस स्थान से दूर रहने वालों को उस सुख से वंचित होना पड़े। वह परमात्मा सर्वव्यापक है, आनन्द स्वरूप है- इसलिए उससे सम्बन्ध बनाकर, उसकी व्यवस्था को स्वीकार करके जो सुख प्राप्त किया जाता है वह हमें पूर्ण सन्तुष्टि करता है। उसी सुख को अपवर्ग या मोक्ष कहते हैं।

एक छोटा सा विचार और कर लें कि योगाभ्यास और ईश्वर की आज्ञा का पालन कर मुक्ति में प्राप्त होने वाला निरन्तर सुख तो करोड़ों में किसी बिरले भाग्यवान को प्राप्त होता है। उसे पाना तो सबके लिए सम्भव नहीं। प्रश्न यह है- संसार में रहकर कर्मयोग चक्र में फँसे हुए करोड़ों लोगों के लिए सुखी जीवन की सम्भावना है या नहीं? संसार सुख-दुःख दोनों का मेल है तो इसमें रहकर दुःखों से बचे रहने और सुखों को प्राप्त करने का उपाय क्या हो सकता है? प्रश्न बड़ा सटीक एवं सबके हित से जुड़ा हुआ है। संसार में रहकर कोई व्यक्ति अपने दुःखों में कमी और सुखों में वृद्धि करने का उपाय जान ले, तो इससे बड़ी उपलब्धि ही कुछ नहीं। सबसे पहले हमें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि परमात्मा ने यह संसार हमारे कर्मों के फल भोग और मुक्ति सुख पाने के लिए बनाया है। संसार दुःखों का पिटारा नहीं है। यह ठीक है कि संसार की वस्तुओं में पूर्ण सुख नहीं है और हो भी नहीं सकता, जब संसार की कोई वस्तु अपने आप में पूर्ण नहीं, सदा बनी रहने वाली नहीं, तो उससे मिलने वाला सुख या दुःख भी पूर्ण वा सदा बने रहने वाला क्योंकर होगा? इतना होने पर भी यह घोषणा तो की ही जा सकती है कि संसार का कोई पदार्थ हमारे लिए दुःख देने वाला नहीं है। परमात्मा ने सब कुछ हमारे सुख के लिए ही बनाया है। यदि हम संसार के सभी पदार्थों के गुण और उनके सदुपयोग की विधि जान कर उनका प्रयोग करना सीख लें तो संसार में रहकर संसार के पदार्थों से भी हम अधिकतम् सुख प्राप्त कर सकते हैं। हमारी अज्ञानता ही हमारे दुःखों का मूल कारण है। आज हमारा विज्ञान बहुत बढ़ गया है। सागर की गहराइयों और आकाश की ऊँचाइयों का ज्ञान देने वाला विज्ञान ऐसे लोगों के हाथों में है, जिनकी विश्व-कल्याण में कोई रूचि नहीं। प्रकृति का क्रूर दोहन व मानवीय क्षमता के निर्मम शोषण करने के मार्ग टटोलने वाला विज्ञान चन्द लोगों की कभी तृप्त न होने वाली वासनाओं की पूर्ति का साधन बनकर रह गया है। सीमित समुदाय के सुख समेटने वाली कोई व्यवस्था मानवीय संवेदनाओं का पोषण नहीं कर सकती। ऐसी कोई भी व्यवस्था ईश्वरीय संविधान का खुला उल्लंघन होने के कारण किसी के लिए सुखद नहीं हो सकती। यही कारण है कि विज्ञान जैसा कल्याणकारी उद्योग भी सुविधाएँ तो खूब बढ़ा रहा है, लेकिन इससे सुख में वृद्धि होती नहीं दिख रही। विज्ञान के भरोसे सुख टटोलने वालों का जीवन सोने के पिंजरे में बन्द पक्षी से कहीं भी अच्छा नहीं दिखता।

संबसे बड़ी बात यह है कि इस संसार में हमारे

बनाए नियम नहीं चलते। हम संसार के नियमों में इस प्रकार बँधे हुए हैं कि जाने-अनजाने में भी हम से किसी नियम का उल्लंघन या दुरुपयोग भी हुआ, तभी हमारे हिस्से में छोटा-मोटा एक दुःख आ जाता है, जो हमें आज नहीं तो कल भोगना ही पड़ता है। दुःखों से बचने का एक मात्र उपाय यही है कि सृष्टि-संचालन के लिए निर्धारित किसी भी नियम का उल्लंघन न होने पाये। ऐसे किसी नियम के टूटने पर मिलने वाले दुःख से बचने का कोई उपाय संसार में नहीं मिलता। सृष्टि के इन्हीं शाश्वत नियमों को विज्ञान की भाषा में 'यूनीवर्सल ट्रूथ' (शाश्वत सत्य) और धर्म की भाषा में 'ऋत्' कहते हैं। इतना कुछ जान लेने के बाद एक विवेकशील व्यक्ति चाहे तो थोड़ी सावधानी के साथ जीवन को अधिक सुखी बना सकता है। धर्म और विज्ञान एक विवेकशील व्यक्ति चाहे तो थोड़ी सावधानी के साथ जीवन को अधिक सुखी बना सकता है। धर्म और विज्ञान में मूलतः कोई अन्तर नहीं। जब दोनों का उद्देश्य मानवीय कल्याण है, तो इनमें भेद व विरोध हो ही नहीं सकता। विज्ञान और धर्म में विरोध मानने के कारण ही ये दोनों मानव के लिए अनर्थकारी बनकर रह गए हैं। वस्तुओं के गुणों को जानकर मानव-हित के विभिन्न प्रकार से उन्हें उपायोगी बनाने की प्रक्रिया को विज्ञान कहते हैं। दूसरी ओर धर्म विज्ञान के इस पक्ष को स्वीकार करता हुआ एक मानव का दूसरे मानव के साथ जो न्यायनिष्ठ व्यवहार होना चाहिए उस की व्याख्या करके मानव को शाश्वत सुख के भण्डार परमात्मा से मिलने की व्यवस्था भी प्रस्तुत करता है। चूँकि वेद ईश्वर का दिया हुआ सृष्टि का अटल संविधान है, इसलिए वेदों में धर्म और विज्ञान दोनों ज्ञान है। सुख की इच्छा वाले सज्जन वेदों को अवश्य पढ़ें, वेदों का समझे बिना न धर्म को समझा जा सकता है और न विज्ञान को। धर्म और विज्ञान को समझे बिना संसार में रहकर सुख पाने की इच्छा कभी किसी की न तो पूरी हुई और न होगी।

आज मानव की प्रवृत्ति, उसकी सोचने की शक्ति गड़बड़ा गई है। सुख पाने की लालसा में वह धर्म और विज्ञान अर्थात् मानवीय शिष्टाचार और पदार्थ विद्या तक को ताक पर रख देता है। शराब पीना, सिगरेट फूंकना, तम्बाकू जैसे नशीले व विषैले पदार्थों से लेकर अण्डा, मांस, मछली तक को खाने वाले मानव का जीवन क्या विज्ञान सम्मत कहा जा सकता है? रात को जागने व दिन में सोने को विज्ञान ठीक मानता है? धार्मिक होने का दावा करने वालों की ओर देखें तो उधर भी खूब घपड़ सपड़ चलती है। झूठ बोलना, धोखा देना, धन की हेराफेरी करना, गृह शान्ति व भविष्य फल बताना, तन्त्र मन्त्र, गण्डे ताबीज करना, शुभाशुभ मुहूर्त बताना धर्म की किस परिभाषा में आता है। आजकल तो धर्म स्थलों में चरित्रहीनता की घटनाएं होना चौंकाता नहीं है। ऐसे विज्ञानवादी और धर्मध्वजी सुख के सपने देखते हों तो समझो वह विज्ञान और धर्म के सबसे बड़े शत्रु हैं। धर्म के शाश्वत सिद्धान्तों और विज्ञान की मानवोपयोगी चेतना को जानते हुए भी व्यवहार में न मानने वालों को विज्ञान का मित्र कौन कह सकेगा? जिनका सब ज्ञान केवल प्रवचन, व्याख्यान और लेखन, भाषण के द्वारा धन कमाने के लिए होता है, निश्चय जानो कि उनके लिए वह धन भी सुख के स्थान पर दुःख का ही भण्डार लेकर आता है।

क्रमशः

पञ्च महायज्ञ
(उत्त्रा नेरुर्कर)

पञ्च महायज्ञों के विषय में महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि में विस्तार से लिखा है। इस लेख में इस विषय पर, अन्य विषयों से जोड़कर, एक भिन्न ओर से प्रकाश डाल रही हूं।

पञ्च महायज्ञों के विषय में पहले तो यह जानना महत्वपूर्ण है कि ये केवल गृहस्थियों के लिये कहे गये हैं। इनमें से एक-दो दूसरे आश्रमों के लिये कहे गये हैं, जैसे ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ में ब्रह्म और दैव यज्ञ, परन्तु वहाँ भी उनका स्वरूप भिन्न होता है। इसलिए उन्हें इन यज्ञों के नाम से नहीं पुकारा जाता। दूसरी ओर, गृहस्थियों के लिये ये अनिवार्य कर्म हैं, जिनको कि जहाँ तक हो सके, छोड़ा नहीं जाना चाहिए, ऐसा मनु महाराज ने कहा है। तब, यह प्रश्न उठता है कि केवल गृहस्थियों के लिए ही ये क्यों कहे गये हैं? मनु लिखते हैं-

पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चौदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्।।
मनुस्मृतिः ३।६८।।

अर्थात् गृहस्थी, अपने गृह कर्म करते हुए, निश्चित रूप से पाँच प्रकार से हिंसा करता है। इन हिंसाओं के स्थान (सूना) हैं- चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली और पानी का घड़ा। यहां हिंसा इस प्रकार होती है- खाना पकाते हुए, कोई-न-कोई छोटे कीड़े-मकोड़े आग का शिकार हो ही जाते हैं; इसी प्रकार, चक्की, झाड़ू, ओखली में क्षुद्र कृमि-कीटों की हत्या हो जाती है; पानी के उबालने, आदि, में भी हम किसी-न-किसी बैक्टीरिया, आदि को अवश्य मारते हैं। इस प्रकार, अपने दैनिक जीवन में, गृहस्थ, न चाहते या जानते हुए भी, कई हिंसाएँ कर जाता है। जबकि ये हिंसाएँ अन्य आश्रमों में भी होती होंगी, परन्तु ये कर्म मुख्य रूप से गृहस्थी ही करता है। अन्य व्यापार-सम्बन्धी कर्मों में भी व्यावहारिक मनुष्य इसी प्रकार जाने-अनजाने में जीव-जन्तुओं को चोट पहुँचाता रहता है। सो, जबकि एक ब्रह्मचारी भी अपने पैरों के नीचे अवश्य ही चींटी को कुचलता हैं, परन्तु किसान के हल से अधिक हत्या होती है। इन कारणों से, प्रायश्चित के रूप में, गृहस्थ को निर्धारित पञ्च यज्ञ नित्य करने होते हैं। मनु कहते हैं कि इन कर्मों द्वारा गृहस्थी अपनी की हुई हिंसा के फल से निवृत्त हो जाता है-

पञ्चैतान्यो महायज्ञान् न हापयति शक्तितः।
स गृहेऽपि वसन् नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते।।

मनुस्मृतिः ३।७१।।

अर्थात् जो भी यथाशक्ति पञ्च महायज्ञों को नहीं छोड़ता है, नित्य करता है, वह घर में रहते हुए भी हिंसा-दोषों से लिप्त नहीं होता है। ये विधि ऋषियों ने स्थापित की है, यह भी वे बताते हैं।

इन पञ्च महायज्ञों का एक और आयाम भी है। मनुष्य के तीन ऋण माने गये हैं- ऋषि-ऋण, देव-ऋण और पितृ ऋण। ये ऋण इस प्राकर हैं। अपने आचार्यों, गुरुओं से जो हम विद्या ग्रहण करते हैं, वह उन गुरुओं का हम पर महान उपकार है। वह उपकार दक्षिणा देने से नहीं उतरता, अपितु उस विद्या को आगे बढ़ाकर- या तो अन्यों को पढ़ाकर, या फिर प्रयोग से, नई खोजों से आगे बढ़ा कर- चुकाया जाता है। देवऋण वह है जो प्राकृतिक शक्तियों ने इस ब्रह्माण्ड और इस शरीर को

रचकर हमारे अनेक प्रकार के भोगों के लिए समर्थ किया है, उसके कारण होता है। वैसे तो यह शक्तियाँ चेतन नहीं हैं। सो, ऋण का प्रश्न नहीं उठता, परन्तु हमारे भोग के कारण प्रदूषण उत्पन्न होता है, जिसे यदि दूर न किया जाये, तो वह बढ़ता जाता है। वास्तव में, यह प्राकृतिक शक्तियों का हमारे द्वारा घटाना ही ऋण (Subtraction) है। इसका एक अकेला उपाय है- नित्य सायं-प्रातः हवन। तीसरा ऋण है पितरों का, हमारे पूर्वजों का, जिन्होंने, प्रजा-तन्तु को न तोड़ते हुए, सन्तति उत्पन्न की और उनको उपयुक्त संस्कार दिये। उस ऋण से उऋण होने का मुख्य उपाय है, उन ही की तरह सन्तति उत्पन्न करके परम्पराओं को आगे बढ़ाना।

पञ्च महायज्ञों और ऋणों का सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिए अब पञ्च महायज्ञों का संक्षिप्त वर्णन करते हैं। मनु ने स्वयं इनका सार इस प्रकार बताया है-

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिभौंतौं नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।।
मनुस्मृतिः ३।७०।।

स्वाध्यायेनार्चयेदर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि।
पितृन् श्राद्धैश्च नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा।
मनुस्मृतिः ३।८१।।

१) **ब्रह्मयज्ञ-** स्वाध्याय और अध्यापन। स्वाध्याय में मोक्षपरक ग्रन्थों का वाचन और ओम् का जप, अर्थात् उपासना, सम्मिलित है। ऊपर हमने देखा कि पढ़ना-पढ़ाना ही ऋषि ऋण को उतारना है। और यज्ञ का दूसरा भाग, जो ब्रह्म में तल्लीन होना है, वह विशेष रूप से अपने लिए होता है।। हमारे तीन प्रकार के सम्बन्ध होते हैं- एक हमसे महतर शक्ति परमात्मा से; दूसरा, हमसे लघुतर शक्ति प्रकृति से; तीसरा, प्रकृति सम्बद्ध होकर, अन्य जीवात्माओं से।

प्राकृतिक सम्बन्धों में तो हम दिन-भर निकाल देते हैं परन्तु ब्रह्म के साथ के लिए समय निकालना पड़ता है। वास्तव में, वही हमारे सच्ची उन्नति होती है।

इस यज्ञ के फल हैं- हमारे शुभ गुणों में वृद्धि, परमात्मा से प्रेम, मोक्ष में आस्था व उसका मार्ग प्रशस्त होना।

२) **दैवयज्ञ-** हवन करना। पुनः जैसे हमने ऊपर देखा, यह देव-ऋण से उऋण होना ही है।

इसका फल है- वातावरण-शुद्धि व स्वास्थ्य-लाभ।

३) **पितृयज्ञ-** जिन ऋषियों, विद्वानों और विशेष रूप से, अपने वृद्ध बन्धु-जनों, जिनसे हम प्रतिदिन के सम्पर्क में हों या जो हमारे आश्रय में हों, का तर्पण व श्राद्ध। तर्पण का अर्थ हे तृप्त करना, सेख देनाः श्राद्ध का अर्थ है श्रद्धा से सेवा करना। सु, यह पितृ-ऋण से मुक्त होने का एक और उपाय है। जिन्होंने हमारे अन्न से या ज्ञान से पालन-पोषण किया उनका प्रत्युपकार करना हमारा धर्म है, यही मनु कह रहे हैं। उनके विवरण से यह भी सन्देह मिट जाता है कि श्राद्ध मृत पूर्वजों का किया जाये, या जीवितों का। जीवितों के लिए ही मनु बताते हैं कि हम नित्य-प्रति भोजन-छादन, आदि, दें, और प्रेमपूर्वक व्यवहार से उनको सुखी करें।

फलस्वरूप, गुरूजनों के कृपा व आशीर्वाद से, हमारे ज्ञान और गुणों में वृद्धि होती है, हमें आयु, बल व यश प्राप्त होते हैं।

४) **भूतयज्ञ या बलिवेश्वदेवयज्ञ-** बलि- खाद्य पदार्थों की आहुति देना। यहाँ बलि का अर्थ पशु-हत्या नहीं है, इसमें तो कोई संशय है ही नहीं। इस यज्ञ के दो भाग हैं। पहला, घर में पके खाने के घृत या मिष्ट युक्त कुछ अंश को गृह्य-अग्नि में आहुत करना। वह आहुत भाग पुनः वैश्वदेव- प्राकृतिक शक्तियों के लिए होता है। दूसरा,

सिद्ध अन्न के एक अन्य भाग को घर में इधर-उधर बिखेरना। यह क्षुद्र जीव-जन्तुओं, जैसे चींटी, कौआ, कुत्ता या रोगियों आदि के लिए होता है। इसी के साथ, हम पर आश्रित भृत्यों को भी हमें पहले अन्न-भाग देकर ही स्वयं ग्रहण करना चाहिए। सही दृष्टि से दखें तो यह 'भूत-ऋण' से मुक्ति है। हमसे हीनतर प्राणी भी हम पर उपकार करते हैं इसलिए हमें भी उनका उपकार करना है, यही इस यज्ञ का आशय है।

फल में, हमें सब जन्तुओं के उपकार का बोध, उनके और हमारे सूक्ष्म सम्बन्ध (web of life) का ज्ञान, उन पर किए हिंसा-कर्म का प्रायश्चित (वस्तुतः, यही यज्ञ मुख्य रूप से ऊपर कहे गृहस्थ हिंसा-कर्म का प्रयश्चित है। अन्य यज्ञ प्रायः अन्य प्रत्युपकारों के लिए हैं)।

पश्चिमी सभ्यता ने जब अनेकों जीव-प्रकारों को पृथ्वी पर समाप्त कर दिया, तब ही उन्होंने यह जाना कि कैसे, बड़े ही विचित्र रूप से, सभी जीव एक-दूसरे से जुड़े हैं, और कैसे अफ्रीका की कोई प्रजाति अमेरिका में मनुष्यों का उपकार कर रही थी।

५) अतिथियज्ञ वा नृयज्ञ- विद्वान्, परोपकारी, संन्यासी, उपदेशकों को निवास व भोजन देना, और उनसे उपदेश ग्रहण करना। संन्यासियों का एक धर्म होता है गृहस्थियों को उपदेश देना, क्योंकि गृहसथी को अधिक गूढ़ विषय पढ़ने की शक्ति नहीं बच रहती, और धर्म-कर्म के विषय में उसके अनेकों संशय भी जागृत होते रहते हैं। इनका उपदेश व समाधान संन्यासी का कर्तव्य है। इसके प्रत्युपकार में गृहस्थी को संन्यासी को अपने घर में शरण देनी होती है। परन्तु, मनु ने संन्यासी के लिए भी निर्देश दिया है कि वह एक रात्रि से अधिक किसी घर में न ठहरे।

फल तो, स्पष्ट रूप से, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष सम्बन्धी संशयों का निवारण, व कर्तव्याकर्तव्य का बोध।

मनु यह भी स्पष्ट करते हैं कि, इन पाँचों यज्ञों में, ब्रह्म और देव सबसे महत्वपूर्ण है। ब्रह्मयज्ञ तो हमें प्रतिदिन के मलिन विचारों से मुक्त करता है, और दैवयज्ञ हमारे वातावरण की मलिनता दूर करता है। दूसरे यज्ञ छूट भी जाएँ, इन दो यज्ञों को हमें यथाशक्ति करते रहना चाहिए।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि ये पञ्च महायज्ञ किसी न किसी प्रत्युपकार से जुड़े हैं। क्योंकि गृहस्थी सबसे अधिक इस संसार का भोग करता है, इसीलिए ये कर्म उसी के धर्म बताए गये हैं। अन्य आश्रमी केवल आवश्यकतानुसार भोग करते हैं, परन्तु गृहस्थी सुखदायक, शृंगार, भूषण, आदि, अनेकों वस्तुओं का निर्माण, क्रय-विक्रय, आयात-निर्यात, प्रयोग व सेवन करता है। इस कारण से उस पर उनका प्रत्युपकार करने का भी सबसे अधिक भार है। कुछ जनसंख्या के कारण, कुछ अत्यधिक उत्पाद के कारण, कुछ अत्यधिक अपशिष्ट करने (waste करने) के कारण, और कुछ अत्यधिक प्रदूषण के कारण, प्रकृति की यह 'हिंसा' भयावह रूप ले चुकी है। साथ ही गृहस्थियों ने दैवयज्ञ करने की प्रथा भी 'अग्नि-पूजा का ढकोसला' समझ कर त्याग दिया है। इस कारण से मनु के वचन सत्य सिद्ध हो रहे हैं- **"दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम् (मनु. ३।७५)"**, अर्थात् दैवकर्म से युक्त होकर ही गृहस्थी चराचर जगत् का भरण-पोषण करता है। इस भरण-पोषण के अभाव में प्रकृति का महान् प्रकोप सर्वत्र दृष्टिगोचर है।

❑❑

वेदों की ओर-एक कदम और

(आचार्य दार्शनेय लोकेश)

श्री मोहन कृति आर्ष तिथि पत्रक के प्रकाशन से अब तक आप सभी पाठक अवश्य ही अवगत हो चुके होंगे। पत्र का संवत् २०७० का अंक, ६० प्रतिशत वितरित हो चुका है। यह तिथि पत्रक प्रतिवर्ष तपस्य (फाल्गुन) मास का प्रकाशित हो चुका होता है। अपेक्षा है कि विद्वज्जन, पुरोहित वर्ग एवं अधिसंख्यक बुद्धिजीवी इस पत्रक (वैदिक पंचांग) के एक प्रति मँगवाकर, इसका अवलोकन अवश्य करेंगे। वेद एवं वैदिक संस्कृति के अनुरागी जनों पर विश्वास किया जा सकता है कि वे इस क्रान्तिकारी प्रयास के महत्व को समझते हुये अपनी उपयोगी सम्मति से अवश्य अवगत करायेंगे।

इस लघु लेख के माध्यम से हम एक प्रेरक प्रश्न करना चाहते हैं कि क्या आपने कलैण्डर रिफार्म कमेटी की रिपोर्ट पढ़ी है? यदि नहीं तो मेरी मानिये, सब कुछ छोड़कर सबसे पहिले इस रिपोर्ट की प्रति प्राप्त कीजिये और इसका अध्ययन कीजिये और समझिये कि वैदिक पंचांग के सन्दर्भ का शास्त्रीय और यथार्थ सत्य क्या है?

इस शास्त्रीय सत्य को समझने के लिये प्रस्तुत हैं निम्नलिखित अति महत्वपूर्ण बिन्दु -

प्रकृतितः उत्तरायण या मकर संक्रान्ति अथवा दक्षिणायन या कर्क संक्रान्ति 'परमक्रान्ति' जनित एक ही दिन के विषय भेद से दो भिन्न नाम हैं। ठीक ऐसे ही 'शून्य क्रान्ति' जनित वसन्त सम्पात या वैशाखी तथा शरद सम्पात या कार्तिक संक्रान्ति भी अलग-अलग नहीं अपितु एक ही दिन के दो अलग-अलग नाम हैं।

ये चारों दिन ही आधार हैं किसी भी वैदिक, वास्तविक और सिद्धान्त सम्मत पंचांग या शुद्धता से कहा जाये तो एक आर्ष तिथि पत्रक के।

कोई भी दो नक्षत्र आपस में समान नहीं हैं और ना ही एक भी नक्षत्र १३ अंश २० कला का ही है। खेद तो इस बात का है कि यह सत्य बड़े-बड़े ज्योतिर्विदों के संज्ञान तक में नहीं है। सारे ही लोगों के द्वारा असत्य का गतानुगतिक परम्परा के रूप मे पालन होता चला आ रहा है।

स्पष्ट करना जरूरी है कि चित्रा नक्षत्र पूरे एक अंश का भी नहीं है, जबकि अभिजित नक्षत्र ६ अंश से भी अधिक का एक पृथक और स्वतन्त्र नक्षत्र है। देखें, पुष्य नक्षत्र ३ अंश ३६ कला का है, तो आश्लेशा नक्षत्र १७ अंश ३० कला के लगभग का है। ऐसे में नक्षत्रों को समान चार चरणों से देना और नवांश आदि विभाजनों में अभिव्यक्त करना तथा **अवहड़क चक्र** (जिसके आधार पर तथाकथित राशि नाम और जातक के गण नाड़ी आदि निर्धारित किये जाते हैं) ये सब महज एक प्रपंच के सिवाय अधिक कुछ भी नहीं रह जाते। इस आधार पर देखा जाये तो द्विपु की एवं त्रिपु कर जैसे मुहुर्त योगों का तो कोई गणितीय महत्व ही नहीं है।

विंशोत्तरी आदि दशाओं (१२० या १०८ आदि) का भी कोई गणितीय आधार नहीं है। अगर है, और भारत भर के किसी भी ज्योतिर्विद को उसकी जानकारी भी है तो, हम उनका सादर आवाह्न करते हैं कि कृपया हमें भी सोपपत्तिक रूप से यह गणना अवगत करायें।

इसके साथ ही आपको हमें आगाह करना है कि सूर्य-चंन्द्रादि की ६ या १० वर्षों की दशा अवधि निहित करना भी नितान्त कल्पना प्रसूत है। वैज्ञानिक विचारों से सर्वथा अपरिचित तथ्यों पर देखते हुये भी तथाकथित ज्योतिर्विद, ज्योतिष नाम की लपेट में फलित ज्योतिष को विज्ञान कहते हैं। **ज्ञातव्य है कि गणितीय आधारों से हटकर केवल कल्पना प्रसूत स्वीकृतियों पर ज्योतिष कभी भी विज्ञान की संज्ञा या हैसियत प्राप्त नहीं**

कर सकता।

सत्ताइस योगों तथा चौदह करणों की गगन में कोई स्थिति या अभिज्ञा नहीं है। अस्तु इनको तिथि पत्र (तथाकथित पंञ्चाग) में शामिल करने का भी कोई औचित्य नहीं है।

सायन नाम से जानी गई स्थितियां ही वास्तव में ग्रहों की दृक्तुल्य स्थितियाँ हैं। अज्ञानता और असत्य की हद तो यह है कि इन स्थितियों में से 'अयनांश' नामक 'विषाणु' भाग को घटाकर विकृत स्थिति को लेकर पंञ्चाग का आधार लिया जाता है।

परिणाम यह है कि आज सारी ही पंञ्चांग ऋतु असम्बद्ध, गलत, भ्रामक और अवैज्ञानिक हैं तथा भोली-भाली धर्मपरायण जनता को अशुद्ध तिथियों में ही निर्धारित व्रत-पर्व-त्यौहारों को मनाने हेतु विवश किये हुये हैं।

गणित ही नहीं प्रत्यक्ष और सूर्य सिद्धान्त (देखें ३/४६-४८) के प्रमाण से पृथ्वीवासियों के लिये स्थानीय क्षितिज पर उदित हो रहा लग्न कभी भी निरयन नहीं हो सकता। क्रान्ति बिन्दु होने से और उसी पथ पर अवस्थित होने से सूर्य, राहू-केतु की निरयन कल्पना ही निरर्थक है..... फिर चन्द्र मंगलादि भी.....?

वेद में सौर और चान्द्र दोनों ही प्रकार से मधु माधवादि नाम मास क्रम हेतु दिये हुये हैं। ये मास छः ऋतुओं में तथा ऋतुयें दो अयनों में विस्तृत की गई हैं। **सभी छः ऋतुयें, दो अयन व दो सम्पात बिन्दुओं से नियमित की गई हैं।** सम्पात बिन्दु वसन्त अथवा शरद ऋतु के मध्य बिन्दु, दक्षिणायन ग्रीष्म ऋतु की पूर्ति तथा वर्षा ऋतु के आरम्भ का एवं उत्तरायण हेमन्त ऋतु की पूर्ति व शिशिर ऋतु का आरम्भ करता है। आवश्यक तौर पर ये बिन्दु सक्रान्तियों के बिन्दु भी हैं। इन तथ्यों को स्पष्ट करने वाला पंचांग ही वैदिक पंचांग है। अस्तु आज जब **वेदों की ओर लौट चलें' का नारा कुछ सन्त सत्पुरुषों की कृपा से गति पा रहा है तो ऐसे में हमारा सांस्कृतिक दायित्व है कि हम मधु, माधव, शुक्र, षुचि, नभ, नभस्य, ईश, ऊर्ज, सहः, सहस्य, तपः एवं तपस्य, इन बारह वैदिक महीनों को रखते हुये पंचांग को वैदिक वैशिष्टय प्रदान करें।**

कुछ लोग ये भ्रम पाले हुये हैं कि चन्द्रमा की भी ऋतुयें होती हैं। वास्तव में ऋतुयें तो केवल सूर्य से ही सम्भव है और यही वैदिक एवं शास्त्रीय प्रमाण भी है **"आदित्यस्त्वेवसर्वऋतवः।"** चन्द्रमा ऋतु बना नहीं सकता क्योंकि वह दिन और रात्रि का कारक नहीं है। **चन्द्रमा नहीं होगा तो भी ऋतु चक्र काम करेगा, दिन-रात्रि, मास, अयन, व वर्षा भी यथावत् होते रहेंगे।** चन्द्रमा के न होने पर केवल चान्द्र तिथियाँ, शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष, राहू-केतु तथा ग्रहणादि नहीं होंगे। **अस्तु चन्द्रमा से ऋतुओं की कल्पना निराधार है इसीलिये संक्रान्तियों से जोड़कर सौर मास एवं उन सौर मासों से जोड़कर ही शुक्लादि क्रम से चान्द्रमासों को रखना और तदनुसार ही अधिमास आदि को संयोजित करना ही वैदिक पंचांग की अनिवार्यता है।**

कुछ लोग यह भ्रम भी पाले हुये हैं कि हमारे त्यौहार चान्द्र तिथियों पर आश्रित हैं और सौर तिथियों पर कोई १० त्यौहार भी नहीं गिना सकता। यह बात इसलिये भी हास्यास्पद है कि चन्द्रमा पर आधारित तिथि आदि सारे गणितीय तथ्य सौर पर ही तो आधारित है। शास्त्र वचन है कि **"दिविसोमो अधिश्रितः"** (अथर्ववेद १४/०१/१०)। अस्तु यह कहना कि व्रत पर्वादि चान्द्र तिथियों के आधार पर ही नियत हैं और उनमें सौर मासों का कोई अर्थ नहीं है, एक गलत कथन है और ठीक ऐसा ही है जैसा कि यह कहना कि सूर्य परिभ्रमणशील है, पृथ्वी नहीं। **सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुश्वच** अर्थात् सूर्य ही जगत की आत्मा है। वही जगत की ऊर्जा है। सूर्य के अतिरिक्त सभी कुछ शरीर है।

◻◻

वेदों का प्रकाश

(स्वामी वेदरक्षानन्द सरस्वती, संरक्षक-आर्ष गुरुकुल कालवा)

प्रश्न- किनके आत्मा में कब वेदों का प्रकाश किया?

उत्तर- अग्नेर्वा ऋग्वेदो जायते वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः।। शत०।।

प्रथम सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा इन ऋषियों के आत्मा में एक-एक वेद का प्रकाश किया।

प्रश्न- यो वै ब्रह्माणं विद्धाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।। यह उपनिषद् का वचन है- इस वचन से ब्रह्मा जी के हृदय में वेदों का उपदेश किया है।

फिर अग्न्यादि ऋषियों के आत्मा में क्यों कहा?

उत्तर- ब्रह्मा के आत्मा में अग्नि आदि के द्वारा स्थापित कराया देखो! मनु ने क्या लिखा है-

अग्नि वायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः साम लक्षणम्।।
(मनुस्मृति)

जिस परमात्मा ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि आदि चारों महर्षियों के द्वारा चारों वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराये और उस ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा से ऋगु, यजुः, साम और अथर्ववेद का ग्रहण किया।

प्रश्न- उन चारों ही में वेदों का प्रकाश किया अन्य में नहीं। इससे ईश्वर पक्षपाती होता है।

उत्तर- वे ही चार सब जीवों से अधिक पवित्रात्मा थे। अन्य उनके सदृश नहीं थे। इसलिये पवित्र विद्या का प्रकाश उन्हीं में किया।

प्रश्न- किसी देशभाषा में वेदों का प्रकाश न करके संस्कृत में क्यों किया?

उत्तर- जो किसी देशभाषा में प्रकाश करता तो ईश्वर पक्षपाती हो जाता। क्योंकि जिस देश की भषा में प्रकाश करता उनको सुगमता और विदेशियों को कठिनता वेदों के पढ़ने-पढ़ाने की होती। इसलिये संस्कृत ही में प्रकाश किया, जो किसी देश की भाषा नहीं और वेदभाषा अन्य सब भाषाओं का कारण है। उसी में वेदों का प्रकाश किया। जैसे ईश्वर की पृथिवी आदि सृष्टि सब देश और देशवालों के लिये एक सी और सब शिल्प विद्या का कारण है, वैसे परमेश्वर की विद्या की भाषा भी एक सी होनी चाहिये कि सब देश वालों को पढ़ने-पढ़ाने में तुल्य परिश्रम होने से ईश्वर पक्षपाती नहीं होता। और सब भाषाओं का कारण भी है।

प्रश्न- वेद ईश्वरकृत है अन्यकृत नहीं। इसमें क्या प्रमाण?

उत्तर- जैसा ईश्वर पवित्र, सर्वविद्यावित, शुद्धगुणकम स्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि गुणवाला है, वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल कथन हो वह ईश्वरकृत, अन्य नहीं। और जिसमें सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण आप्तों के और पवित्रात्मा के व्यवहार से विरुद्ध कथन न हो वह ईश्वरोक्त। जैसा परमेश्वर है और जैसा सृष्टिपरखा है वैसा ही ईश्वर, सृष्टि, कार्य, कारण और जीव का प्रतिपादन जिसमें होवे, वह परमेश्वरोक्त पुस्तक होता है और जो प्रत्यक्षादि प्रमाण विषयों के अविरुद्ध शुद्धात्मा के स्वभाव से विरुद्ध न हो, इस प्रकार के वेद हैं। अन्य बाईबल, कुरान आदि पुस्तकें नहीं।। (सत्यार्थ प्रकाश, सप्तम समुल्लास, महर्षि दयानन्द)

□□

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०१-०७/६/२०१३

जून 2013

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2012-14
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१२-१४
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2012-14

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण दो माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

— दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

• प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
• विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
• स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका
श्री सेवा में........................
ग्राम........................
डा०........................
जिला........................

प्रकाशक : धर्मपाल आर्य, ४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-६
मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिण्टर्स, १५३४, गली कासिमजान, बल्लीमारान, दिल्ली-६